VISHVA–JYOTI R. N. NO. 1/57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2015 TO 31.12.2017)

६५, ५

अगस्त –2016

विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

संस्थापक–सम्पादक :
स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

सम्पादकः
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
(सञ्चालक)

उप–सम्पादक :
डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर
होश्यारपुर

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द
चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल
होश्यारपुर

डॉ. (सुश्री) रेणू कपिला
पटियाला

शुल्क की दरें

आजीवन (भारत में)	:	१२०० रु.	आजीवन (विदेश में)	:	३०० डालर
वार्षिक (भारत में)	:	१०० रु.	वार्षिक (विदेश में)	:	३० डालर
सामान्य अङ्क (भारत में)	:	१० रु.	सामान्य अङ्क (विदेश में)	:	३ डालर
विशेषाङ्क (एक भाग भारत में)	:	२५ रु.	विशेषाङ्क (एक भाग विदेश में)	:	६ डालर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होश्यारपुर–146 021 (पंजाब, भारत)

दूरभाष : कार्यालय : 01882–223581, 223582, 223606
सञ्चालक (निवास) : 01882–224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
डॉ० भवानीलाल भारतीय	संस्कृत-सूक्तियों का वैविध्य	लेख	2
डॉ० कन्हैया लाल पाराशर	सबकी माँगे खैर कबीरा	कविता	9
डॉ० किशनाराम बिश्नोई	जम्भवाणी में साधना का स्वरूप	लेख	10
श्री कृष्णचन्द्र टवाणी	मानवता महाव्रत	लेख	15
श्री देवनारायण भारद्वाज	संत कबीर की उपनिषद्-दृष्टि	लेख	19
डॉ० विद्यानन्द 'ब्रह्मचारी'	स्वामी रामतीर्थ तथा सरदार प्रो० पूर्ण सिंह	लेख	22
डॉ० लक्ष्मी राणा	उत्तररामचरित एवं कुन्दमाला नाटक में अंगीरस-साम्य	लेख	28
श्री ताराचन्द आहूजा	विदुरनीति के ज्ञान-कमल	लेख	32
सुश्री रजनी बाला	उपनिषदों में स्वच्छ जीवन-दर्शन की परिकल्पना	लेख	36
श्री अनिल कुमार	वर्तमान काल में पशुधन (गौ के विशेष सन्दर्भ में) की उपयोगिता (संस्कृत साहित्य के आधार पर)	लेख	39
महात्मा चैतन्यमुनि	सरस्वती वन्दना	कविता	42
डॉ० मथुरादत्त पाण्डेय	घुम्मकड़ साधक	पुस्तक समीक्षा	43
	संस्थान-समाचार		45
	विविध-समाचार		48
	पुण्य-पृष्ठ		49-52

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६५ } होश्यारपुर, श्रावण २०७३; अगस्त २०१६ { संख्या ५

यथा मधु मधुकृतः,
संभरन्ति मधावधि।
एवा मे अश्विना वर्च,
आत्मनि ध्रियताम्।।

(अथर्व. 9.1.16)

(यथा) जैसे (मधुकृतः) मधुमखियां (मधावधि) मधु के ऊपर मधु (संभरन्ति) जोड़ती रहती हैं। (अश्विना) हे अश्विदेवो! (एवा) वैसे ही (आत्मनि) मेरे अन्दर (प्रताप के ऊपर) (वर्च) प्रताप नित्य (ध्रियताम्) जुड़ता रहे।

(वेदसार-विश्वबन्धु)

संस्कृत-सूक्तियों का वैविध्य

– डॉ० भवानीलाल भारतीय

सामान्य कथन तथा काव्यगुणपूर्ण कथन में क्या अन्तर है, इसे समझना चाहिए। सामने सूखा पेड़ खड़ा है इसे हम साधारण रूप में कहेंगे **शुष्कः वृक्षः तिष्ठत्यग्रे**। किन्तु इसी वाक्य को यदि कोई सरस हृदय कवि कहेगा तो उसका वाक्य होगा– **नीरसतरुवर विलसति पुरतः**। भाव वही है किन्तु शब्दसंचय में अन्तर है। यही कारण है कि काव्य की भाषा सामान्य अभिधार्थक अर्थ से बचती है तथा वक्रोक्ति-प्रधान, व्यञ्जनापरक अर्थ देने वाली शब्दावली का प्रयोग करती है। कहा भी है–

वक्रोक्तयः यत्र विभूषणानि
काव्यार्थबाधः परमप्रकर्षः।
वाक्येष्वर्थेषु अभिधैव दोषः
सा क्वचिदन्यः सरणिः कवीनाम्॥

कवियों का यह मार्ग कुछ भिन्न ही है जहां वक्रोक्ति को ही आभूषण समझा जाता है और वाक्य के सामान्य अर्थ के बाध को श्रेष्ठ माना जाता है। अच्छी कविता में वाक्य के साधारण अर्थ (अभिधार्थ) को दोष माना जाता है। वाल्मीकीय रामायण के उस प्रसंग को याद करें। वानरराज सुग्रीव ने सीता का पता लगाने की प्रतिज्ञा की किन्तु राजपाट पाकर जब वह इस कार्य में आलस्य दिखाने लगा तो लक्ष्मण ने चेतावनी भरे स्वर में कहा–

न सः संकुचितपन्थाः येन बालि हतो गतः।

सुग्रीव, वह मार्ग अभी बंद नहीं हुआ है जिससे बालि मर कर चला गया। सामान्य अर्थ तो यही है किन्तु लक्ष्मण के कथन में जो व्यंग्यार्थ निहित है उसका भाव यही है कि यदि राम के द्वारा बालि का वध किया जा सकता है तो रामकाज में प्रमाद दिखलाने पर तुम्हारी भी वही गति हो सकती है।

निश्चय से कहा जा सकता है कि शताब्दियों तक रचे जाने वाले संस्कृत-साहित्य में एक से एक बढ़कर सूक्तियों का अखूट भण्डार है। 'सुभाषितरत्न भाण्डागार' जैसे अनेक सूक्ति-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। ये सूक्तियां संस्कृत के काव्यों, नाटकों, उपाख्यानों, प्रहसनों तथा शास्त्र-ग्रन्थों में सर्वत्र बिखरी पड़ी हैं। इनका विषयवैविध्य

तथा रसवैविध्य भी आश्चर्यकारक है। धर्म, सदाचार, नीति तथा व्यवहार की विविध शिक्षा देने वाली इन सूक्तियों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

भक्तिमार्ग का उदय- माना जाता है कि भक्तिमार्ग का प्रथम आरम्भ दक्षिण भारत से हुआ जहां रामानुज, मध्व तथा निम्बार्क आदि वैष्णवाचार्यों ने भक्तिमार्ग का प्रवर्त्तन किया। तमिलभाषी आल्वार भक्तों ने भी इसमें योगदान दिया। स्वयं भक्ति देवी कहती हैं-

उत्पन्ना द्रविडे़ साऽहं वृद्धिं कर्णाटके गता।
क्वचित्क्वचित् महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता।।

मैं द्रविड़ देश (तमिलनाड) में उत्पन्न हुई, कर्णाटक में मुझे बल मिला। महाराष्ट्र में यत्र-तत्र मेरी वृद्धि हुई, अन्ततः गुजरात में मुझ में क्षीणता आ गई। कहा भी है-

भक्ति द्राविड़ ऊपजी लाये रामानन्द।

अर्थात् दक्षिण में उत्पन्न भक्ति को रामभक्त स्वामी रामानन्द उत्तर भारत में लाये।

भक्तों के परम आराध्य भगवान् राम के शील, शक्ति और सौन्दर्य को अनेक कवियों ने सराहा है किन्तु दुःख और सुख को समान समझकर स्थितप्रज्ञ स्थिति में रहना उनकी विशेषता रही। जब उन्हें राज्याधिकारी बनाये जाने का समाचार मिला तो उनको कोई हर्ष नहीं हुआ और तुरन्त बाद जब वनवास की सूचना मिली तो उनके चेहरे पर खेद की कोई रेखा नहीं देखी गई। इसे कवि ने निम्न सूक्ति में काव्यबद्ध किया है।

आहूतस्याभिषेकाय वनाय गमनाय च।
न मया लक्षितः कश्चिद्स्वल्पमप्याकार विभ्रमः।।

राम के चेहरे पर थोड़ी भी शिकन नहीं पड़ी इसे कवि ने चतुराई से व्यक्त कर दिया। वे दोनों स्थितियों में समान रहे।

संस्कृत में जयदेव जैसे कवि भी हुए जिनके लिए कृष्ण की मधुर लीलाओं का गान यदि भगवत्-स्मरण था तो इन्हीं श्रृंगार-लीलाओं के द्वारा विलासी व्यक्तियों का मन-रञ्जन भी होता था। एक पन्थ दो काज या 'माखन बेचत हरि मिले' इसे ही कहते हैं। जयदेव का कहना है-

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम्।
मधुर कोमल कान्तपदावली शृणुतदा जयदेव सरस्वतीम्।।

हिन्दू कौन ?- संस्कृत सूक्तियों के माध्यम से हिन्दूधर्म की विशेषताएं बताई गईं। लोकमान्य तिलक ने लिखा

प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु साधनानां अनेकता।
उपास्यानामनियमः हिन्दूधर्मस्य लक्षणम्।।

अर्थात् वेदों को प्रमाण मानना किन्तु ईश्वर-प्राप्ति के साधनों में अनेकता स्वीकार करना, साथ ही उपास्य देवों की अनेकता, यही हिन्दूधर्म के लक्षण हैं। दूसरे पक्ष वाले कह

सकते हैं कि उपास्य देवों की अनेकता धार्मिक एकता को कैसे सुदृढ़ करेगी?

महामना मालवीय जी ने इसी विषय को इस प्रकार कहा तथा थोड़ा विस्तार दिया-

प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु साधनानामनेकता।
उपास्यानामऽनियमश्चैतत् धर्मस्य लक्षणम्।।
धर्ममेनं समालम्ब्य विधिभिः संस्कृतस्तु यः।।
श्रुति स्मृतिपुराणोक्तैः क्रमप्राप्तैरथा ऽपि वा।।
स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः श्रद्धाभक्ति समन्वितः।
शास्त्रोक्ताचारशीलस्य सर्वे हिन्दू-सनातनाः।।

मालवीय जी की दृष्टि में सनातन हिन्दू वह है जो वेदों को प्रमाण मानता है, साधनों की अनेकता को स्वीकार करता है, उपास्य देवों की बहुलता भी उसे स्वीकार्य है तथा जो विधि-विधानपूर्वक उसे सुसंस्कृत कर श्रुति, स्मृति तथा पुराणोक्त आचार का क्रमशः पालन करता है। इतना ही नहीं, श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक जो अपने अपने नियत कर्मों का शास्त्रोक्त रीति से पालन करता है वही सनातनधर्मी हिन्दू है।

आचार्य चाणक्य का आदर्श- आर्यधर्म और आर्यसाम्राज्य की स्थापना में आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य (अपर नाम कौटिल्य) का कितना हाथ था, यह बताने की आवश्यकता नहीं है। संस्कृत में विशाखदत्त ने अपने नाटक 'मुद्राराक्षस' में तथा हिन्दी में जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटक चन्द्रगुप्त में चाणक्य के महामेधाशाली व्यक्तित्त्व का अपूर्व चित्रण किया है। विशाखदत्त के चाणक्य का कहना है-

ये यांताः किमपि प्रधार्य हृदये पूर्वगता एव ते।
ये तिष्ठन्तु भवन्तु तेऽपि गमने कामं प्रकामोद्यमाः।।
एकाकेवलमर्थसाधनविधौसेनाशतेभ्योऽधिकाः
नन्दोन्मूलनहृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मागन्मम।।

मेरे कई साथी तो अपने मन के आदेश को मानकर पहले ही मेरा साथ छोड़ गये। जो ठहर गये हैं, वे भी यदि जाना चाहें तो चले जायें, मुझे इसकी चिन्ता नहीं। किन्तु मेरे समस्त अर्थों को पूरा करने वाली सैंकड़ों सेनाओं से अधिक बलशाली मेरी वह बुद्धि मेरे पास ही रहे जिसके कारण मैं अत्याचारी नन्द वंश का नाश कर सका।

चाणक्य के लिए बुद्धि ही सर्वोपरि थी। इसी चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को सम्राट् पद पर अभिषिक्त कर राजसत्ता का त्याग कर दिया। अब वह बस्ती के बाहर एक जीर्ण कुटिया में रहता है। उसकी इस पर्णकुटी तथा वहां के पदार्थों का वर्णन विशाखदत्त ने निम्न प्रकार किया-

अहो राजाधिराजमंत्रिणां विभूतिः
तथाहि- उपलशकलभेदकं गोमयानां
बटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तूपमेतत्।

शरणमपि समिद्भि शुष्यमाणाभिराभिः
विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुण्ड्यम्।।

राजाधिराज चन्द्रगुप्त के मंत्री चाणक्य की इस विभूति को देखो। इस जीर्ण कुटिया में एक पत्थर का टुकड़ा पड़ा है जिससे आचार्य चाणक्य गोमय (कण्डों) के छोटे टुकड़े करता है (यज्ञ में डालने के लिए) यहीं शिष्यों के द्वारा एकत्र किये कुशाओं को स्तूपाकार रखा गया है। इसी स्थान पर यज्ञ में होमने के लिए एकत्र समिधाएं सूख रही हैं। बस महामात्य रहे चाणक्य की कुटिया का यही दृश्य है।

शंकर ने विष क्यों पिया ? - संस्कृत के सूक्तिकार विभिन्न देवों से हास्यमयी चुटकियां लेने में भी संकोच नहीं करते। भगवान् शंकर ने हलाहल विष क्यों पिया, इसका उत्तर सुनिये-

वृषभो प्रपलायते प्रतिदिनं सिंहावलोकद्भया।
पश्यन् मत्तमयूरमन्तिकचरं भूषा भुजंगव्रजः।।
कृत्तिं कृन्तन्ति मूषकोऽपि रजनौ भिक्षान्तमाक्षयन्।
दुःखेनेति दिगम्बरो स्मरहरो हालाहलं पीतवान्।।

पार्वती के सिंह को देखकर शंकर का नन्दी (बैल) भाग रहा है। शिव के गले का सांप स्वामीकार्तिक के वाहन मोर को देखकर भयभीत है। मोर सांप को खा जाता है। उधर शिवपुत्र गजानन का वाहन चूहा सांप से भयभीत है, कहीं वह उसे उदरस्थ न कर ले। अपने परिवार के सदस्यों की यह दशा देखकर दिगम्बर शिव ने हलाहल विष का पान कर लिया।

विष्णु का हाल भी कुछ कम दयनीय नहीं है। यह देखें- विष्णु जगन्नाथपुरी में कृष्ण की दारुमय (काष्ठ से बनी प्रतिमा) को लक्ष्य कर कवि ने लिखा-

एकः पुत्र स्त्रिभुवनविजयी मन्मथो दुर्निवारः।
एका भार्या प्रकृति चपला चंचला सा द्वितीया।
शेषः शय्या स्वगृहमुदधौ वाहनं पन्नगारि।।
स्मारं स्मारं स्वगृहचरितं दारुभूतो मुरारि।।

विष्णु का एक ही पुत्र कामदेव है वह भी अनंग है, एक ही पत्नी लक्ष्मी है किन्तु वह चपला, चंचला, अस्थिर रहती है। विष्णु की शैया के रूप में शेषनाग तथा निवास के लिये समुद्र, इन्हें वाहन भी मिला तो गरूड़रूपी पक्षी। अपने घर की ऐसी दशा देखकर भगवान् विष्णु ने जड़काष्ठ का देह धारण किया।

हिन्दूमान्यताओं की खिल्ली उड़ाई बौद्ध पण्डित ने- हमने देखा कि लोकमान्य तिलक तथा महामना मालवीय जी ने हिन्दू-धर्म की कतिपय विशेषताओं का उल्लेख किया। किन्तु शताब्दियों पूर्व बौद्ध नैयायिक धर्म-कीर्ति ने हिन्दू-मान्यताओं पर कुत्सापूर्वक प्रहार इस प्रकार किया-

वेदप्रामाण्यंकस्यचित् कर्तृवादःस्नाने धर्मेच्छा जातिवादावलेपः।
सत्तापरम्भः पापहानाय चेति ध्वस्तप्रज्ञानांपञ्चलिंगानि जाड्ये।।

अर्थात् वेद को प्रमाण मानना, किसी (ईश्वर) को संसार का रचयिता बताना, गंगादि किसी नदी में स्नान कर स्वयं को धर्मात्मा मानना तथा स्वयं की जाति ब्राह्मणादि बता कर जाति का अभिमान करना तथा पञ्चाग्नि आदि तपों से पापों का शमन होना मानना, ये पांच आस्थाएं नष्टबुद्धि तथा जड़ीभूत लोगों के चिन्ह हैं।

देवी-देवताओं की वक्रोक्तिशैली में स्तुति- सूक्तिकार कवियों ने वक्रोक्तिपूर्ण शैली में हिन्दू देवमाला में परिगणित देवी देवताओं की व्यंग्यार्थशैली में स्तुति की। एक श्लोक है-

नमस्कारप्रियो भानुर्जलधाराप्रियः शिवः।
अलंकारप्रियो विष्णुः ब्राह्मणाः भोजनप्रियाः।।

सूर्य को नमस्कार प्रिय है, यही कारण है कि प्रातःकाल भक्तजन सूर्य को अर्घ्य देते हैं। शिव तो अपनी पिण्डी पर जल गिराने से ही संतुष्ट हो जाते हैं। विष्णु को नाना अलंकारों से सज्जित किया जाता है। ब्राह्मणों का भोजनप्रिय होना प्रसिद्ध है।

भगवान् शंकर की प्रशंसा में लिखा गया निम्न श्लोक विचित्र वक्रकथनयुक्त है-

पिनाकफणिबालेन्दुभस्ममन्दाकिनीयुताः।
पवर्गरचिता मूर्तिः अपवर्गं प्रदातु नः।।

यह किसी ग्रन्थ का मंगलश्लोक है। पवर्ग में आने वाले सभी वर्णों से युक्त पदों को शिव के अंगों में सुशोभित बताकर उन्हें मुक्ति प्रदाता बताना इस श्लोक की विशिष्टता है। प वर्ग से बनने वाले ये पदार्थ हैं। प-पिनाक (धनुष), फ-फणि (सर्प), ब-बालेन्दु (बाल चन्द्रमा), भ-भस्म, म-मन्दाकिनी शिव सिर पर विराजमान गंगा। यह सभी पदार्थ पवर्ग के हैं।

व्यासस्तुति- वेदान्त दर्शन के रचयिता महर्षि बादरायण (व्यास) की स्तुति का निम्न श्लोक देखें-

अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः।
अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् बादरायणः।।

वेदान्तशास्त्र प्रणेता बादरायण यद्यपि चार मुख वाले नहीं हैं तथापि ब्रह्मा के तुल्य वेदवेत्ता हैं। वे दो भुजा वाले विष्णु के समान हैं। यद्यपि शिव के समान उनके ललाट पर तीसरा नेत्र नहीं है तथापि वे शिव के तुल्य कल्याणकारी हैं।

सुगृहिणी तथा पतिव्रता पत्नी की प्रशंसा का निम्न श्लोक देखें-

कार्येषु दासी करणे षु मंत्री,
शयनेषु रम्भा क्षमया धरित्री।
भोज्येषु माता षट्कर्मयुक्ता धर्मपत्नी।।

सेवाकार्य में दासी के तुल्य, साधन जुटाने में मंत्री के समान, दाम्पत्य सम्बन्धों में रम्भा (अप्सरा) के समान, क्षमा करने में

दासी तुल्य तथा भोजन खिलाने में माता तुल्य वात्सल्यमयी यह धर्मपत्नी नारी का आदर्श पेश करती है।

संस्कृत के सूक्तिकारों ने सर्वोपरि प्रमाण वेदों के लिए अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया-

न च वेदादृते किञ्चिच्छास्त्रं धर्माभिधायकम्।
योऽन्यत्र रमतेऽसौ सो न सम्भाष्यो द्विजातिभिः।।

कूर्मपुराण (पूर्व १२-२७०) का यह श्लोक स्पष्ट घोषित करता है कि वेद से भिन्न कोई अन्य ग्रन्थ धर्मसंज्ञक नहीं है। अतः जो व्यक्ति वेदभिन्न ग्रन्थों को महत्त्व देता है उससे द्विजवर्ग को सम्भाषण भी नहीं करना चाहिए। **पुराकाल में धर्म ही शासक था-** समाज की आरम्भिक अवस्था में न तो राजा था और न दण्ड की व्यवस्था। वस्तुतः जब सारी प्रजा धर्मपूर्वक आचरण करे तो राजा या दण्डनायक की आवश्यकता ही क्या?

3/5, शंकर कालोनी, श्रीगंगानगर

सबकी माँगे खैर कबीरा

-डॉ० कन्हैया लाल पाराशर

सबकी माँगे खैर कबीरा खड़ा हुआ बाजार में।
उसका कोई दोस्त न दुश्मन भरपूरे संसार में।।

जो कोई तुमको काँटे बोवे उसको बो तू फूल रे
तुमको फूल से फूल मिलेगें उसको हैं त्रिशूल रे
बुरा करेगा मार पड़ेगी यम के कारागार में
सबकी माँगे खैर कबीरा खड़ा हुआ बाजार में।।

हाड़ जलें ज्यों लकड़ी अरू केश जलैं ज्यों घास रे
सब कुछ जलता देख सामने हुआ कबीर उदास रे
भरी दुपहरी लुटता देखा सबकुछ इस संसार में
सबकी माँगे खैर कबीरा खड़ा हुआ बाजार में।।

तू क्यों दु:खी जो तेरा घर है गल कटियन के पास रे
जो भी करेंगें आप भरेंगे तू क्यों हुआ उदास रे
सबके कर्मों का निपटारा होगा उस दरबार में
सबकी माँगे खैर कबीरा खड़ा हुआ बाजार में।।

अहरन की चोरी करते हैं करें सुई का दान रे
छत पर चढ कर रोज देखते कितनी दूर विमान रे
लोभी और लालची डूबे इस झूठे व्यवहार में
सबकी माँगे खैर कबीरा खड़ा हुआ बाजार में।।

डॉ० कन्हैया लाल पाराशर

रंगी को नारंगी कहते बने दूध को खोया रे
चलती को गड्डी कहते ये देख कबीरा रोया रे
उल्टी-पुल्टी सोच है इनकी नैय्या है मझधार में
सबकी माँगे खैर कबीरा खड़ा हुआ बाजार में।।

कहै कबीरा भाग्य हमारा उपजे पूत कमाल रे
राम नाम धन छोड़ बावरा घर ले आया माल रे
ऐसा पूत न होय कहीं भी कभी किसी घर बार में
सबकी माँगे खैर कबीरा खड़ा हुआ बाजार में।।

कर मैं फिरती है माला हरपल जीभ फिरै मुख मांहि रे
मनुआ तो दश दिशि फिरै सो चले यह तो सुमिरन नांहि रे
सुमिरन की तो राह निराली सन्तों के दरबार में
सबकी माँगे खैर कबीरा खड़ा हुआ बाजार में।।

नैनन की करी कोठरी पुतली पलंग बिछाई रे
पलकन की चिक डारि प्रेम से पिय को लिया रिझाई रे
मैं पूरी मेरे सज्जना पूरे मन मिलिया भरतार मैं
सबकी माँगे खैर कबीरा खड़ा हुआ बाजार में।।

साधु आश्रम, होश्यारपुर

जम्भवाणी में साधना का स्वरूप

– डॉ० किशनाराम बिश्नोई

गुरु जम्भेश्वर की वाणी बहुमुखी और विविध आयाम वाली है। उनकी विचारधारा के कई सोपान हैं जो ब्रह्मानुभूति और स्वानुभूति पर आधारित हैं। इसमें संयमित जीवन जीने, संतोषवृत्ति की पालना, शील-धर्म की प्रतिबद्धता, गुरु-आज्ञा, स्वस्थजीवन, आरती और स्तुति करना, हरिभजना, ईश्वर में आस्था और निष्ठा, अमावस्या का व्रत, प्रातःकाल स्नान करना, नित्यप्रति हवन करना, परोपकार के कार्य करना, अहिंसा और प्रेम की परिणति, असत्य भाषण नहीं बोलना, पवित्र कार्य करना, पानी छानकर प्रयोग में लाना, दूध को भी छानकर उपयोग में लाना, प्रकृति और पर्यावरण की रक्षा करना, क्षमा-दया की भावना रखना, चोरी, निंदा, वाद-विवाद का परित्याग करना, काम-क्रोध, माया-मोह इत्यादि का परित्याग करना, स्वर्ग की भावना रखना, स्वयं के हाथ से रसोई बनाना, स्वच्छता का पालन करना, मद्य-निषेध रखना, नील का परित्याग करना इत्यादि नियमों का पालन करना ही उनकी साधना के मुख्य सोपान हैं। इन उन्नत्तीस धर्म नियमों के पालन करने वाले मनुष्य को ही बिश्नोई कहते हैं। उन्नत्तीस नियमों की आचार-संहिता का पालन करने के साथ ही गुरु के उपदेश, विष्णुजप साधना, वैदिक धर्म के प्रति आस्था, अवतारवाद में विश्वास, पौराणिक ग्रंथों के प्रति आदर की भावना, अतिथिसत्कार, लोकसंग्रह की पालना, फोकट ज्ञान का तिरस्कार, वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना, उदात्तवादी दृष्टिकोण, रामराज्य के आदर्श की अवधारणा, आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा, ईश्वर में आस्था रखने, अशुभ कार्यों से बचने का उपदेश दिया है। संयमित आचरण की क्रियान्विति और अनुशासित जीवन जीने की प्रेरणा दी है। शुद्धभाव से विष्णु जप करना उनकी साधना का केन्द्रीय विषय रहा है।[1]

विष्णु का जप करने से अनंत गुणों का फल प्राप्त होता है। मृत्यु के उपरांत मोक्ष की प्राप्ति करता है। उनका कहना है कि जीव इस

1. जाम्भोजी की सबदवाणी (मूल और टीका), डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० १२१-१२२

जगत में रहते हुए सांसारिक कार्यों को करते हुए भी संयम के मध्यमार्ग पर चलते हुए मुक्ति के परम पद को प्राप्त कर सकता है। इसी साधना द्वारा मनुष्य लोकमंगल और लोक-कल्याण के पथ पर अग्रसर होता है। यह परमार्थ के सच्चे मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्रदान करता है। जीवनमूल्यों की दृष्टि से इस साधनापद्धति का विलक्षण महत्व सिद्ध होता है। जम्भवाणी में मानव-जीवन और प्रकृति-लोक के दैनिक नियमों, आयामों, अवस्थाओं एवं विविध पद्धतियों का सविस्तार से वर्णन हुआ है।

जम्भवाणी में गीता की भांति ज्ञान, भक्ति और कर्म का सुन्दर समन्वय हुआ है। जो इस महनीय वाणी की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। साधक गुरु-आज्ञा व उनके उपदेशों पर चलने से ही मुक्ति का अधिकारी होता है। गुरु ज्ञान-दाता के साथ-साथ मुक्तिदाता भी है-

पाहन प्रीति फिटाकर प्राणी,
गुरु बिन मुक्ति न जाई।।[2]

गुरु के सिद्धान्तों का अनुशरण करके ही साधक निर्गुण विष्णु की प्राप्ति कर सकता है। विष्णु की प्राप्ति के पश्चात् ही जीवन लोक-कल्याणकारी बनता है। गुरु के प्रभाव से ही शिष्य ज्ञान, भक्ति, कर्म और योग की शिक्षा प्राप्त करता है। क्योंकि जीवन साधना के क्षेत्र में इन चारों का समन्वय होना आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य भी है। ये चारों एक-दूसरे के पूरक और अन्योन्याश्रित हैं। इन सभी का पारस्परिक समन्वय ही साधना के क्षेत्र की विशिष्ट उपलब्धि है। ज्ञान-भक्ति और कर्म प्रभुमिलन के तीन साधन हैं साधक कोई भी साधना अपनाए लक्ष्य वही परमपद की प्राप्ति ही है। साधना के क्षेत्र में प्रत्येक मार्ग की निजी सुविधाएं हैं, अपनी कठिनाईयां हैं और अपेक्षाए हैं परन्तु साध्य वही पूर्ण पुरुष है जिसका आकर्षण ज्ञानी को रहस्योद्घाटन के लिए प्रेरित करता है। भक्त को आत्म-समर्पण हेतु उभारता है। कर्मयोगी को आत्मत्याग एवं परोपकार हेतु प्रेरणा देता है।

ब्रह्मसाधना के क्षेत्र में तीनों मार्गों की भिन्न-भिन्न मान्यताएं हैं। उनकी दृष्टि में सृष्टि के रहस्यों को जान लेने के उपरान्त ज्ञानी पुरुष का परमलक्ष्य, परमसत्ता में लीन होना होता है। किन्तु आत्मसमर्पण और आत्मनिवेदन जो कि भक्ति के आवश्यक उपादान हैं इनके अभाव में लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती, इसलिए सांसारिक कर्मों से बचने के लिए अनासक्त कर्म अथवा निष्काम कर्म भी आवश्यक है तभी जीव पूर्णता की स्थिति को प्राप्त करने में

2. गुरु जम्भेश्वर की सबदवाणी, पृ० २९१

समर्थ होता है। गुरु जम्भेश्वर ने विष्णु जप के लिए अजपाजप की साधना को महत्वपूर्ण माना है।[3]

अजपाजप की पद्धति से ही ईश्वर प्राप्ति की जा सकती है उसी विधि द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है। यहां ज्ञान से तात्पर्य ब्रह्मज्ञान से है। इसलिए निरंजन विष्णु की प्राप्ति भी ज्ञान के द्वारा हो सकती है। ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञान के अभाव में जीव मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता। यदि ऐसा ज्ञान जीव को पहले से ही हो तो वह लोकाचार या बाह्याडम्बरों और माया के बंधन में आबद्ध नहीं हो सकता। मायावी प्रपंच को अच्छी तरह से समझ लेता। यदि आपका हृदय पवित्र और सात्विक है तो सभी तीर्थ आपके अंत:करण में ही विद्यमान हैं-

अठसठि तीरथ हिरदै भीतर बाहरि लोकाचारूं।[4]

जीव को ऐसा भान होने पर वह मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है-

रतन कया वैकुठे वासो जुरा मरण भोव भाजूं।[5]

साधना द्वितीय सोपान है काम-क्रोध मोह-माया पर विजय प्राप्त करके जीव को ऐसा आत्मज्ञान हो जाये तो जीव स्वर्गलोक का अधिकारी हो सकता है। परन्तु इसके लिए मृत्यु से पूर्व ही जीव को समर्थ करना पड़ता है-

सुरग पहेली सांभलि जीवड़ा पह उतरिबा तीरूं।[6]

साधना में ज्ञान की अत्यधिक उपयोगिता है। ज्ञान से ही अज्ञान को समाप्त किया जाता है। तत्पश्चात् मन पवित्र, निर्मल और सात्विक हो जाता है। किन्तु यह आवश्यक है कि ज्ञान हो जाने पर जीव ईश्वर से तादात्म्य स्थापित कर सकता? जब तक मनुष्य उस ज्ञान को आचरण में परिवर्तित न कर सके तब तक ज्ञान केवल पाखंड का ही रूप समझा जाता है। यह भी आवश्यक है कि ज्ञानी मनुष्य को ज्ञान का कभी अहंकार नहीं होना चाहिए। अहंकार आने से माया का प्रभाव बढ़ जाता है। अत: ज्ञानी को माया के प्रभाव से मुक्त रहना चाहिये। माया मुक्त होने पर ही भक्तिभावना की वृत्ति स्वत: बढ़ जायेगी। भक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध करते हुए तुलसीदास जी ने भी कहा है कि-

भगतिहि सानुकूल रघुराया।
ताते तेहि डरपति अविमाया।।
राम भगति निरुपम निरुपाधी।
बसइ जासुउर सदा आबाधी।।
तेहि बिलोकि माया सकुचाई,
करि न सकई कछु निज प्रभुताई।
अस विचरि ने मुनि बिग्यानी,
जाचहिं भगति सकल सुख खानी।।[7]

भक्ति के प्रभाव से माया डरती है। भक्ति

3. गुरु जम्भेश्वर की सबदवाणी, पृ० ११४
4. वही पृ० ९६
5. वही पृ० ३२९
6. गुरु जम्भेश्वर की सबदवाणी, पृ० २९६
7. रामचरितमानस, टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार, पृ० ५५८

के प्रभाव से माया संकुचित हो जाती है। भक्ति की अहर्निश साधना से ईश्वर की प्राप्ति होती है। भक्तियोग से ओत-प्रोत व्यक्ति गुणों का खज़ाना है।

भारतीय धर्मपरम्परा में ज्ञान और भक्ति के साथ कर्म को अत्यधिक महत्व दिया गया है। प्रत्येक जीव को अपने कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। प्रत्येक प्राणी स्वयं ही अपने कर्मों का निर्माता और भोक्ता होता है। गीता में कर्मयोग की व्याख्या करते हुए श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

कर्मयोग में विश्वास करते हुए इनके फल की इच्छा मत करो। मनुष्य का कर्म करना मात्र कर्तव्य है। फल प्राप्त करने में मनुष्य का अधिकार नहीं है। प्रत्येक कार्य के पीछे निष्काम कर्म करते रहो। गुरु जम्भेश्वर ने भी व्यक्ति को निष्कामभाव से कर्म करने की प्रेरणा दी है।[8]

विसन नै दोस किसौ रे प्रांणी।
तेरी करणी का उपगारू।।[9]

जैसा कर्म करोगे फल भी ऐसा ही प्राप्त होगा। इसमें विष्णु भगवान् का कोई हाथ नहीं वे तो कर्म के फलदायक मात्र हैं। शुभ कर्मों का फल शुभ होता है, अशुभ कर्मों का फल अशुभ। यदि पूर्वजन्म के अच्छे कर्म किए होंगे तो आगे का जीवन सफल रहेगा। व्यक्ति की पहचान उसके कर्मों के कारण ही होती है न कि कुल और आयु से।

उतिम कुली का उतिम न कहिबा
कारण किरिया सारूं।[10]

किन्तु कर्मयोगी जीव तो सब भोगों से परे है। मुक्ति प्राप्त होने में कर्मयोग की भूमिका अत्यंत अहम् है। निष्काम भाव से कर्म में संलग्न रहते हुए ईश्वर की भक्ति करना जीव का सहजधर्म है। यह सहजधर्म शाश्वत सत्य से अत्यधिक प्रभावित है। उसमें बाह्याडम्बरों का कोई स्थान नहीं है। उसमें केवल सात्विक प्रतिमानों का ही निर्धारण किया है जो यज्ञ, दान, तप, स्वाध्याय आदि बाह्य उपादानों को उपयोगी साबित करता है। लेकिन कर्मयोग भक्ति और ज्ञान से पृथक् नहीं रह पाता, क्योंकि कर्म संलग्नता को ईश्वर-साधना का आधार बनाना भक्ति का ही रूप है और सांसारिक कार्यों में प्रवृत्त रहकर भी निवृत्तिमूलक दृष्टिकोण को अपनाए रखना ही एक सच्चे ज्ञानी का ही लक्षण है।

इसके साथ-साथ जम्भवाणी में आत्मज्ञान को भी महत्वपूर्ण तत्व माना गया है।

---

8. गीता २/४७
9. गुरु जम्भेश्वर की सबदवाणी, पृ० ११०
10. वही, पृ० ३१७

आत्मज्ञान ही दूसरे शब्दों में तत्वज्ञान और ब्रह्मज्ञान कहा गया है। तत्वज्ञान के लिए सद्गुरु कृपा का होना नितान्त आवश्यक है।

मेरे गुरु जो दीन्ही शिक्षा,

सर्वअलिङ्गण फेरी दीक्षा।[11]

श्री गुरुग्रंथसाहिब में भी सतगुरु की शिक्षा को महत्वपूर्ण माना है।

मूल ज्ञान है अकह संदेशा मूल ज्ञान है जिन उपदेश।

मूलज्ञानकोई बिरला पावैमूलज्ञानसतगुरुसमझावे।।[12]

वस्तुतः तत्त्वज्ञान के बिना जीव इस संसारचक्र में भटकता रहता है। पर तत्वज्ञान के साथ-साथ मन का स्थितिप्रज्ञ होना भी अनिवार्य है क्योंकि मन ज्ञानवान् होते हुए भी अपने स्वभाव से चंचल और परिवर्तनशील होता है। वह मायावी प्रपंच में बंध जाता है। इसी कारण गुरु जम्भेश्वर जीव को भक्ति-साधना की ओर प्रेरित करते हैं। इस भक्ति-भावना में शुद्ध वृत्ति, प्रेम, श्रद्धा और निष्ठा के गुण अन्तर्निहित हैं। उनकी इस पद्धति में योगसाधना की वृत्ति का प्रभाव है। यही योगसाधना पर आधारित सहजमार्ग है। इस मार्ग पर चलने वाले साधक को ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति सहज में ही हो जाती है। इसी मार्ग को दूसरे शब्दों में सूरतमार्ग भी कहा है। इस नाम-मार्ग को पकड़कर साधक अपनी साधना को सफल बना लेता है। यही आत्मा-परमात्मा के मिलने का सच्चा मार्ग है। इस नाम मार्ग में मात्र विष्णुजप को ही केन्द्र बिंदु माना है। विष्णु का जापक अजर तथा अमर कहा गया है-

परतैविष्णु अमृत रस पीवै, जरा न व्यापै युग युग जीवै।

विष्णु मंत्र है प्राणधार, जो कोई जपै सो उतरैपार।।[13]

सम्पूर्ण जम्भवाणी में निर्गुण विष्णु के प्रति गहरी आस्था और निष्ठा का प्रतिपादन हुआ है। इसके अतिरिक्त साधना के तीनों पक्षों ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग का सुन्दर समन्वय भी हुआ है।

अतः गहन चिंतन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि जम्भवाणी और जाम्भाणी-साधना एक समन्वयवादी और लोकसंग्रहवादी साधना है जिसका मूल लक्ष्य लोकधर्म, लोकमंगल और लोककल्याण है। यही उनकी सहज साधना थी। सहजता ही उनके आचार-विचार का सर्वस्व है यही उनकी साधनागत मौलिकता है।

गुरु जम्भेश्वर धार्मिक अध्ययन संस्थान,
गुरु जम्भेश्वर विश्वविद्यालय, हिसार-125001 (हरियाणा)

11. गुरु जम्भेश्वर की सबदवाणी, पृ० २१९
12. गुरु ग्रंथसाहिब, भाईजोधसिंह, चतरसिंह, गुरुद्वारा प्रबंधक समिति अमृतसर, पृ० ६१२
13. गुरु जम्भेश्वर की सबदवाणी, पृ० २१३

मानवता महाव्रत

– श्री कृष्णचन्द्र टवाणी

हम जब भारतीय संस्कृति की बात करते हैं तो यह स्पष्ट रूप से लिखा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति की आधारशिला सद्‌गुणों पर आधारित है। इन्हें अपनाकर व्यक्ति जहां सर्वतोन्मुखी हो जाता है,वहीं समाज व राष्ट्र में सुख-शान्ति और समृद्धि आ सकती है। मनुष्य द्वारा दुराचरण व दुर्गुणों को अपनाने से ही समाज में भारतीय सभ्यता व संस्कृति का ह्रास हो रहा है।

इसका कारण स्पष्ट है कि मनुष्य का नैतिक कर्त्तव्य क्या है? यह सोचने-समझने का वर्तमान में किसी के पास समय नहीं है। सर्वप्रथम हमारा कर्त्तव्य क्या है, हमें यह जानना चाहिए। सभी शास्त्रों एवं मनीषियों की मान्यता है कि मनुष्य का प्रधान कर्त्तव्य है अपनी आत्मा की उन्नति करना। गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं कि 'मनुष्य को चाहिए कि वह अपने द्वारा अपना उद्धार करे तथा अपनी आत्मा को अधोगति में ना पहुँचावे।'

अब प्रश्न उठता है कि आत्मा की उन्नति क्या है? इसका अध:पतन क्या है तथा किसमें है? अपने अन्दर आत्म-ज्ञान, परम सुख, संतोष, शान्ति, न्याय आदि की वृद्धि करना ही आत्मा की उन्नति है तथा इसके विपरीत अज्ञान, प्रमाद, अशांति, अन्याय की ओर झुकना व इसकी वृद्धि में हेतु बनना ही उसका अध:पतन है। इसमें कारण है संगति। संगति का प्रभाव भावी जीवन पर निश्चित रूप से पड़ता है। अपने शास्त्रों को पढ़ना तदनुरूप आचरण भी इसमें मुख्य कारण है।

वेद, स्मृति, सत्पुरुषों के आचरण और जिस आचरण से हमारे मन में प्रसन्नता हो, ये चार धर्म के साक्षात् लक्षण माने गये हैं। वर्तमान परिस्थिति व समय में मानवसमाज के लिए मानवता महाव्रत के पालन से बढ़कर अन्य कोई मार्ग एवं सरल साधन नहीं है। यह बात सभी तत्त्व-चिंतकों ने स्वीकार की है कि वर्तमान समय में विश्व में में जो अनेक प्रकार के संकट, संघर्ष, कलह, वैमनस्य, अविश्वास, आतंकवाद आदि प्रवृत्तियां उत्पन्न हो गयी हैं, वह मानवता महाव्रत के त्याग का

ही परिणाम है। मानवता महाव्रत को अपनाकर ही व्यक्ति मानवता की ओर अग्रसर हो सकता है। अतः आध्यात्मिक गुणों (दया, दान, सहिष्णुता, शुचिता, सभ्यता) आदि के विकास द्वारा दैवी गुणों की अभिवृद्धि करने एवं अनैतिकता, अनाचार, विश्वासघात, द्वेष, दम्भ, अहंकार, आलस्य, अकर्मण्यता, चोर-बाजारी, रिश्वत आदि दुर्गुणों को निकालने के लिए सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय मानवता महाव्रत का परिपालनं परम आवश्यक है।

मानवता के सद्गुणों को अपनाना एवं दुर्गुणों को त्यागना ही मानवता-महाव्रत है। भारतीय संस्कृति सदाचार, सद्व्यवहार, परस्पर भाईचारा, प्रेम आदि गुणों को अपनाने की प्रेरणा देती है। मनु महाराज ने मानवता महाव्रत की दस निषेधात्मक मर्यादाओं तथा दस विधानात्मक मर्यादाओं का उल्लेख 'मनुस्मृति' में किया है। मानवता महाव्रत सार्वभौम, सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक आंदोलन है। इसका उद्देश्य व ध्येय मानवमात्र का कल्याण करना है। इन बीस मर्यादाओं का पालन करने से मानव में मानवता की न केवल वृद्धि होगी, अपितु विश्व में समृद्धि, शांति निर्भयता आदि बढ़ेगी। इस मंगलमय शुभ अनुष्ठान के पालन करने से मानव में प्रेम, शांति, भ्रातृ-भाव, संतोष आदि गुणों की अभिवृद्धि होगी। इसके पालन से प्रत्येक प्राणी का कल्याण होगा, प्रत्येक परिवार सुखी होगा तथा समाज व राष्ट्र में शांति व समृद्धि होगी। सभी सम्प्रदाय, मत, वर्ग के लोग इसे अपनाकर अपना तथा अपने परिवार, समाज व राष्ट्र का कल्याण कर सकते हैं।

दस निषेधात्मक मर्यादाएँ:-

1. चौर्य त्याग- बिना किसी के द्वारा दी गई वस्तु को स्वयं ग्रहण न करना। दुःसाहस या जोर-जबर्दस्ती से किसी वस्तु को लेना भी चोरी है। व्यापार में कालाबाजारी, कृत्रिम वस्तुओं की बिक्री तथा सरकार द्वारा निर्धारित कानूनों का उल्लंघन करना भी चोरी है।

2. हिंसा त्याग- प्राणीमात्र पर शस्त्र न उठाना तथा प्राणियों की हिंसा का त्याग। गरीब, असहाय, रोगी, अनाथ को भूखा रखना भी हिंसा है।

3. व्यभिचार त्याग- एक पत्नी-व्रत का पालन करें। परस्त्री को मातृवत् तथा कन्या को भगिनीवत् समझे। अश्लील चित्र दर्शन, अश्लील साहित्य अध्ययन तथा संयमरहित व्यवहार व्यभिचार है।

4. क्रूर वचन त्याग- क्रूर वचन, जिनसे दूसरों को दुःख हो, ऐसे वचन का त्याग करना, प्राणी से मधुर वचन बोलना अर्थात् जो अपने को अच्छा न लगे वैसा दूसरे से भी व्यवहार न करे।

5. असत्य त्याग- किसी भी प्रकार से असत्य कार्य व वचन को नहीं अपनाना चाहिए। कृत्रिम हस्ताक्षर तथा मिथ्या प्रमाणपत्र देना व प्राप्त करना भी असत्य है।

6. पैशुन्य त्याग- अहित करने की भावना से दूसरों के दोषों को प्रकट करना पिशुनता है। अतः इन सभी बातों से दूर रहे।

7. असम्बद्ध प्रलाप का त्याग- वाणी या व्यवहार में भेद होना असम्बद्ध प्रलाप है। अतिवाद असम्बद्ध प्रलाप है। जैसे करें, वैसा ही कहें।

8. पर-धन हरणेच्छा त्याग- दूसरे के धन को किसी प्रकार प्राप्त करना ही पर-धन हरणेच्छा है। अतः ऐसा विचार ही मन में न लाए कि जिसमें पराये धन के प्रति लालसा हो।

9. अनिष्ट चिंतन-त्याग- ईर्ष्या व क्रोध से किसी का भी अनिष्ट नहीं विचारना। अन्य को पीड़ा देने का संकल्प करना, दूसरों की प्रतिष्ठा मिटाने के चिंतन से भी अनिष्ट चिंतन होता है।

10. नास्तिकता-त्याग- नास्तिकता-त्याग कर ईश्वर में श्रद्धा व विश्वास रखना चाहिए। ईश्वर की सत्ता को न मानना नास्तिकता है। आत्म-विश्वास न रखना, वेद-पुराण, शास्त्रों के वाक्यों को न मानना भी नास्तिकता है।

दस विधानात्मक मर्यादाएँ

1. दान- उदारवृत्ति से अपने द्वारा उपार्जित धन का कुछ अंश अवश्य दान करते रहना चाहिए। दान के कई रूप हैं, जैस- अन्न, वस्त्र, विद्या, औषध दान व निःशुल्क जल-वितरण, श्रमदान आदि।

2. संरक्षण- शास्त्र व शस्त्र का उपयोग आवश्यकता पड़ने पर पीड़ितों व निर्दोष व्यक्तियों की रक्षा के लिए करना चाहिए। जैसे दीनों, अनाथों, वृद्धों, बालकों आदि की रक्षा करना। पशु-पक्षियों की रक्षा करना, अपने पड़ौसी की रक्षा करना आदि।

3. सेवा-भाव- माता-पिता, गुरु, अतिथि, रोगी आदि की सेवा उन्हें देवता के समान मानकर करनी चाहिए, यह वेदों की वाणी है। गौ-सेवा, राष्ट्र-सेवा, समाज-सेवा आदि अनेक प्रकार से सेवा की जा सकती है।

4. प्रियवादिता- प्रिय बोलना ही प्रियवादिता है। भगवान् बुद्ध ने कहा कि जो वाणी कर्ण-प्रिय मधुर व सभ्यता संपन्न हो, वही बोलनी चाहिए।

5. सत्य- वेद-वाणी है सर्वदा सत्य ही बोलना चाहिए। सर्वदा पवित्र तथा सत्य वचन बोलना चाहिए। जैसा देखा व जैसा सुना हो, वैसा ही बोलना सत्य है।

6. स्वाध्याय- उत्तम ग्रंथों का निरंतर अध्ययन करना स्वाध्याय है। प्रतिदिन कुछ समय ज्ञानार्जन के लिए स्वाध्याय करना ही

श्री कृष्णचन्द्र टवाणी

ईश्वरोपासना है।

7. हितवादिता- कल्याणकारक वाणी बोलना ही हितवादिता है। सभी के कल्याण के लिए हितकारी वाणी को बोलकर आनंद बढ़ाना चाहिए।

8. संतोष- संतोष ही सुख का मूल है। आवश्यकताओं पर नियंत्रण करना, दुःख-सुख में एक समान रहना संतोष है। अपनी शक्ति से अधिक प्रदर्शन न करना, पुत्र या पुत्री के विवाह के लिए धन न लेना भी संतोष है।

9. दम- इन्द्रियों तथा मन-वाणी को वश में करना ही दम है। असात्विक पदार्थों जैसे- मद्यपान, भांग, गांजा, तम्बाकू आदि का सेवन न करना भी दम है। इनका पालन करके जीवन को सुंदर व सुखी बनाया जा सकता है।

10. आस्तिकता- ईश्वर में श्रद्धा रखना, सब प्राणियों में परमात्मा का निवास है, यह मानकर उनके साथ आत्मवत् व्यवहार करना आस्तिकता है। मनुष्य, पशु-पक्षी आदि पर प्रहार एवं क्रूर व्यवहार न करना आस्तिकता है।

हमारा परम कर्त्तव्य है कि हम सब मन, वचन, कर्म आदि से एक होकर उपर्युक्त मानवता महाव्रतों का जीवन में सदैव पालन करें। इनके अपनाने से परिवार, समाज व राष्ट्र का उत्थान एवं कल्याण अवश्य होगा, इसमें किंचित् भी संदेह नहीं करना चाहिए।

संपादक- अध्यात्म अमृत, ज्ञानमंदिर, सिटी रोड़, मदनगंज-किशनगढ़ (राज.) 305801

संत कबीर की उपनिषद्-दृष्टि

– श्री देवनारायण भारद्वाज

काशी में यदि एक अन्त्यज मार्ग में आदिगुरु शंकराचार्य जी से शास्त्रार्थ कर सकता है और उन्हें वेदान्त के सारतथ्य पर सोचने को बाध्य कर सकता है, तो सन्त कबीर की तो बात ही क्या, वे तो सिद्धहस्त सत्संगी व विद्या-व्यसनी माने जाते हैं। संत कबीर को संस्कृत-सरस्वती की रसधारा से वंचित रखने वाले, उन्हें काशी में बहने वाली सत्संग की तरंगिणी से रोधित नहीं कर पाये, इसीलिये उनके काव्य में वेद-शास्त्र, उपनिषदों की शिक्षायें सरल रूप में जन-मानस में सहज ही समाहित हो गयीं। सर्वप्रथम उपनिषद्, जिसे यजुर्वेद के अन्तिम चालीसवें अध्याय से उद्धृत होने के कारण वेदान्त भी कहते हैं, से मात्र तीन मन्त्र लेते हुए संत कबीर की दृष्टि प्रस्तुत करते हैं। षड्यन्त्रकारियों ने संत कबीर को भले वेदों के समीप न फटकने दिया हो, किन्तु वे इनसे कदापि भटकने नहीं पाये, और अपनी आस्था प्रकट करते रहे।

वेद कतेब कहहु मत झूठे, झूठा जो न विचारे।
सभी घटि एक एक कर लेखे दूजा करि मारै।।

वेद और शास्त्रीय पुस्तकों को क्यों झूठा कहा जाये, झूठा वही है जो इनके ज्ञान पर विचार नहीं करता। जब तू सब प्राणियों के हृदय में एक (ईश-अल्लाह) का निवास मानता है, तो फिर पशुओं को भिन्न समझकर क्यों मारता है। इसी के साथ ईशोपनिषद् के प्रथम मन्त्र में वर्णित है कि ईश्वर की सर्वव्यापकता का अनुभव करते हुए, प्रकृति-पदार्थों का त्यागपूर्वक भोग करते हुए लोभ-लोलुपता से दृढ़तापूर्वक दूर रहो। सदा विचारो कि भला यह धन किसका है?[1] इसी सनातन सार को संत कबीर ने अपनी शैली में यों समझाया है।

खालिक खलक खलक महिं खालिक
सब घट रहा समाई।
लोका जानि न भूलो भाई।।

अब्वलि अल्हा नूर उपाया, कुदरति के सब बन्दे।
एक नूर से सब जग उपजा, कौन भले कौन मन्दे।।

1. ईशावास्योपनिषद्-1

लोगो! आपको यह तथ्य नहीं भूलना चाहिये कि ईश्वर समग्र सृष्टि में समाया रहता है, समस्त सृष्टि ईश्वर में समायी रहती है। ईश्वर ने अपने एक ही (नूर) प्रकाश से सबको उत्पन्न किया है। ईश्वर ने किसी जीव को भला या बुरा नहीं बनाया। प्रभु को कैसे पायें ?

सुन्न सिखर के सार सिला पर आसन अचल जमावै।
भीतर रहा सो बाहर देखैं दूजा दृष्टि न आवै।।

शून्य आकाश में ओंकार की शिला पर बैठकर जो अचल ब्रह्म के सुमिरन में स्थिर हो जाता है, उसके लिए बाहर-भीतर का भेद मिट जाता है। परमात्मा के अतिरिक्त उसे कुछ नजर नहीं आता। देखिये-

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहि।
सब अँधियारा मिट गया, जब दीपक देखा माँहि।।

जब मुझमें अहंकार था, तब ईश्वर नहीं दिखाई देते थे। अब ईश्वर को देख लिया तब 'मैं' का क्या काम ? अन्दर ज्योति जगी, जगभर का अंधियारा मिट गया। **प्रेम गली अति सांकरी, या मे दो न समाहि** अर्थात् प्रेम-मिलन की गली इतनी सांकरी है कि उसमें दो समाते नहीं, प्रत्युत एक होकर ही निकल पाते हैं। एक अन्य मन्त्र के अनुसार वह ब्रह्म चलता-सा है, ऐसा मूढ़ मानते हैं। वह व्यापक होने से अपने स्वरूप से कभी चलायमान नहीं होता। मनुष्य उसकी आज्ञा के विरुद्ध चल इधर-उधर भाग कर भी उसे नहीं जानते। जो उसकी आज्ञा का अनुष्ठान करते हैं वे अपनी आत्मा में स्थित अतिनिकट ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।[2] संत कबीर ने इस रहस्य को बहुत सटीक रूप से यों समझा दिया है-

जा के मुँह माथा नहीं, ना ही रूप कुरूप।
पुहुप बास से पातरा, ऐसा तत्व अनूप।।

ईश्वर का कोई दैहिक मुख-माथा नहीं है, ना ही वह भौतिक रूप या कुरूपता रखता है। पुष्प की गन्ध से सूक्ष्म और अनूप है। गन्ध का आधार वायु होती है। इससे ही सूक्ष्म ईश तत्व एवं जड़ शरीर में चेतनता उत्पन्न होती है, बिना इसके वह धूल-धूसरित हो जाता है। आत्मा-शरीर-मृत्यु विषयक परिदृश्य कबीर ने यों प्रस्तुत किया है। देखें-

सांझ पड़ी दिन ढल गया, बाघन घेरी गाय।
गाय बिचारी न मरे, बाघ न भूखा जाय।।

प्राणवायु के कारणरूप अमृत (अनिलम्) के निकलकर बाहर हो जाने के अनन्तर यह शरीर जो अब तक सुखादि का आश्रय था, अन्त में भस्म होने वाला होता है। इसलिए हे कर्म करने वाले जीव, तू ओ३म-ईश्वर का स्मरण कर, अपने सामर्थ्य के लिए परमात्मा व अपने स्वरूप का स्मरण कर, और अपने द्वारा किये गये कर्मों का स्मरण कर,

---

2. ईशावास्योपनिषद्-5

जिससे तुझे सद्गति प्राप्त हो।[3] यहां पर प्रयुक्त शब्द 'क्लब' ज्यों का त्यों अंग्रेजी में जाकर संगठित-शक्ति का वाचक बन गया है। मन्त्रसार सन्त कबीर के शब्दों में यों देखें-

दस द्वारे का पींजरा, जामें पंछी पौन।
रहिबो को अचरज बड़ा, गये अचम्भा कौन।।
साँई मेरा एक तू, और न दूजा कोय।
दूजा साँई क्या करूं, तुझ सम और न कोय।।

परमात्मा की सर्वव्याप्ति में, शरीर में जीवात्मा पवनरूप में रहता है। मानवशरीर में दस द्वार होने के बाद भी कर्म-बन्धन में बंधा हुआ वह निकल नहीं पाता। यह आश्चर्य की बात है। आत्म-निरीक्षण करने वाला अपने परमात्म से सम्बन्ध जोड़ लेता है, और वह मरने के बाद की कौन कहे जीवनमुक्त हो जाता है। कबीर से मिलने कोई सज्जन उनके घर गये। पत्नी ने कहा- वे तो श्मशान किसी के अन्तिम संस्कार में भाग लेने गये हैं। अतिथि ने कहा कि उनकी पहचान बता दीजिए, मैंने उन्हें पहले कभी देखा नहीं है। पत्नी ने कहा- उनके सर पर वैराग्य की कलगी होगी, आप जान जायेंगे। श्मशान घाट पर पहुँचकर भेंटकर्ता दुविधा में पड़ गया। वहां तो सबके सर पर कलगी देख रहा था। सब शोकमग्न थे, किससे पूछे ? मौन रह गया। अन्त्येष्टि के बाद शवयात्री वापिस लौट रहे थे- फिर से सांसारिक उधेड़-बुन में उलझ रहे थे, सब के सर की कलगी छूमन्तर हो चुकी थी। कलगी वाला सर एक ही बचा था, जो दूर से ही दिखाई दे रहा था। वह था चमकता-दमकता हुआ सर-जीवनमुक्त संत कबीर का। अतिथि के साथ आओ हम भी उनके दर्शन करके साक्षी बन जायें-

हीरा पाया पारखी, घन मंह दीन्हां आन।
चोट सही फूटा नहीं, तब पाई पहचान।।

'वरेण्यम्' अवन्तिका (प्रथम) रामघाट मार्ग, अलीगढ़-202001

3. ईशावास्योपनिषद्-17

स्वामी रामतीर्थ तथा सरदार प्रो० पूर्ण सिंह

—डॉ० विद्यानन्द 'ब्रह्मचारी'

संसार में कुछ ही ऐसे नाम हैं, जिनको स्मरण रखना मनुष्यों ने अपना कर्त्तव्य समझा है। वे व्यक्ति असाधारण प्रतिभा या गुण सम्पन्न होते हैं। उन असाधारण पुरुषों मेरी दृष्टि में सर्वप्रथम युवा संन्यासी स्वामी रामतीर्थ परमहंस पर पड़ती है।

पंचनद गौरव अलौकिक प्रतिभा–सम्पन्न स्वामी रामतीर्थ वह सर्वस्वत्यागी रामबादशाह है, जिसका किसी मजहब से सम्बन्ध नहीं है। वे गणितशास्त्र, दर्शनशास्त्र और अध्यात्मशास्त्र के अध्येता और व्याख्याता दोनों थे। वे प्रेम के देवता थे। उनकी वाणी में दिव्यता थी। वे अलौकिक पुरुष थे।

सन्तों की महान् परम्परा में आधुनिक-युगीन सन्त स्वामी रामतीर्थ का जीवन असन्त प्रेरणादायक था। वे अपने समय के सन्त-महात्माओं में सुन्दरतम कमल सदृश तथा पुनर्जागरण के मन्त्रद्रष्टा और सच्चे संन्यासी थे। वे रहस्यवादी कवि, व्यावहारिक वेदान्ती एवं योगी होते हुए भी कर्मठता में ही जीवन की सफलता मानते थे। उनके अलौकिक व्यक्तित्व में उन महान् आत्माओं की उच्च आदर्श परिलक्षित होता था, जिन्होंने किसी समय उपनिषदों की रचना की थी और वैदिक ऋचाओं का गान किया था।

हिन्दी सन्त–साहित्य जगत् के शिरोमणि, हिमालय और गंगा प्रेमी, व्यावहारिक वेदान्त के प्रचारक और अध्यात्ममूर्ति स्वामी रामतीर्थ और उनके परम विद्वान् पट्टशिष्य श्री नारायण स्वामी टिहरी गढ़वाल नरेश कीर्तिशाह के विशेष आग्रह करने पर 28 अगस्त, सन् 1902 ई० को कलकत्ता से समुद्री जहाज पर सवार होकर जापान गये। उन्हीं दिनों जापान में पार्लियामेंट ऑफ रिलीजन होने की खबर प्रकाशित हुई थी और उसी में भाग लेने हेतु जापान की राजधानी टोकियो पहुँचे थे।

उल्लेखनीय है कि टोकियो स्थित इन्डो-जापानी क्लब नाम की एक संस्था थी, जिसमें भारतीय तथा जापानी विद्यार्थी काफी संख्या में रहा करते थे। इस संस्था के मंत्री पंचनद भूमि के विद्यार्थी सरदार पूर्ण सिंह थे। वहीं पर प्रथम भेंट में इन्होंने अपने दार्शनिक वार्तालाप से

स्वामी जी को अत्यधिक प्रभावित कर लिया। परस्पर वार्तालाप से ज्ञात हुआ कि वह एक सच्चे आनन्द के खोजी और हरवर्ट स्पेंसर के अनुयायी हैं। संयोग से नारायण स्वामी जी उनकी जन्मभूमि और नगर आदि का नाम पूछ बैठे, तो उन्होंने उत्तर दिया कि यह सारा संसार मेरा घर है। इस उत्तर को सुनते ही स्वामी राम ने दूसरा वाक्य यह सुना दिया- भलाई करना मेरा धर्म है।[1]

श्री स्वामी जी और विद्यार्थी सरदार पूर्ण सिंह के बीच जो इन्डो-जापानी क्लब में बातचीत हुई, इसके प्रत्यक्षदर्शी उनके विद्वान् पट्टशिष्य श्री नारायण स्वामी जी ने अपनी पुस्तक 'स्वामी रामतीर्थ जीवनचरित' में वर्णन किया है कि 'विद्यार्थी पूर्ण सिंह इन संन्यासियों को देखकर अत्यन्त गद्-गद् हुए, उन्हें तत्काल अपनी जन्मभूमि याद आ गई और वह अपने मन में समझने लगे कि ईश्वर ने बिना बुलाए दो संन्यासियों को मेरे पास भेज दिया है, अब इनसे मेरे चित्त के समस्त संशय निवृत्त हो जायेंगे और मेरी मनोकामना कुछ न कुछ अवश्य पूरी होगीं। वहां पहुंचकर कुछ देर विश्राम के बाद जब रिलीजन कान्फ्रेंस के विषय में पूछताछ की, तो ज्ञात हुआ कि यह संवाद बिलकुल मिथ्या है, किसी मसखरे ने झूठ-मूठ भारतीय पत्रों में इसे छाप दिया होगा, जिससे लोगों को मुफ्त में धोखा हुआ।[2]

जिस दिन उनसे पहली बारी भेंट हुई थी उसी दिन इनका बुद्धिस्ट (*Buddhist*) यूनिवर्सिटी में भाषण होने वाला था, इन्होंने स्वामी जी से आग्रह किया कि आप भी मेरे साथ वहां चलें। इनकी प्रार्थना पर स्वामी जी तैयार हो गये और पूर्ण सिंह के साथ स्वामी जी का भी भाषण हुआ। स्वामी जी के प्रथम भाषण का इनके ऊपर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि ये उनके सच्चे शिष्य बनने के साथ ही अपनी रसायनशास्त्र की पुस्तकें फेंक कर जापान में ही संन्यासी हो गये।

दूसरे दिन पूर्ण सिंह जी पुरानी पुस्तकों की दुकान से ११ सितम्बर, १८९३ ई० में अमेरिका के शिकागो में आयोजित सर्वधर्म-सम्मेलन की छपी हुई विवरण पुस्तक जिसमें सब भाषण आदि भी थे, स्वामी राम के लिए खरीद लाए। यह पुस्तक दो भागों में थी। ये पुस्तकें जब उन्होंने स्वामी राम को दीं तो वे बोले, 'ओह! ठीक यह चीज इसी पुस्तक की इच्छा राम के हृदय में उठी थी। कैसे तुम्हारे हाथ लगी ? प्रकृति माता स्वयं अपने हाथों राम

1. श्री नारायणस्वामी-स्वामी रामतीर्थ जीवनचरित, पृ० ३५८, ३५९

2. वही, पृ० ३५६, ३५७

की आवश्यकताओं की पूर्ति कर रही है। स्वामी राम को जब निश्चित रूप से पता लग गया कि यहां कोई धार्मिक सम्मेलन होने वाला नहीं है तो वे खूब हंसे। वे बोले, 'प्रकृति की चालें भी कैसी मजेदार होती हैं। राम को हिमालय के उस एकान्त निवास से निकाल संसार का पर्यटन कराने हेतु उसने कैसी सुन्दर युक्ति निकाली। वह झूठा समाचार क्या-क्या गुल खिला रहा है। राम तो स्वयं धर्मों का विशाल सम्मेलन है। यदि टोकियो विश्व सम्मेलन नहीं करना चाहता, तो न करने दो उसे, राम तो अपना सम्मेलन करेगा ही।'[3]

उन्हीं दिनों टोकियो में पूना के प्रोफेसर छत्रे अपने सर्कस का पहला शो दिखाने वाले थे। भारतीय छात्र अपने साथ स्वामी राम को भी वहां ले गए। यहीं प्रख्यात पूर्वीय विद्वान् तथा टोकियो इम्पीरियल विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष श्री तकात्कुसु की राम से भेंट हुई। इससे तकात्सुकु को इतनी प्रसन्नता हुई कि जब ये लोग वहां से चलने लगे, तो प्रोफेसर महोदय ने पूर्ण सिंह से कहा- 'मेरी इंग्लिस्तान में प्राध्यापक मेक्समूलर के यहां अनेकों विद्वज्जनों तथा दार्शनिकों से भेंट हुई है। किन्तु मैंने इस प्रकार का महामानव कहीं नहीं देखा, जैसे स्वामी राम हैं। वे तो अपनी समग्र दार्शनिक विचारधारा के सजग उदाहरण हैं, ऐसे अर्थपूर्ण कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनमें वेदान्त तथा बौद्ध धर्म का एक स्थान पर समन्वय हुआ है। वे स्वयं धर्म हैं। वे सच्चे कवि तथा सच्चे दार्शनिक हैं।

श्री के० हिराई ने भी स्वामी रामतीर्थ को सर्कस के दर्शकों में ही देखा था। शो खत्म होने के बाद उनसे भी राम की भेंट हुई थी। श्री हिराई ने कहा था- 'कि राम अलौकिक पुरुष हैं। वे त्रिगुणातीत तथा द्वन्द्वों से दूर हैं। उन्होंने अपने स्थूल शरीर को भी दिव्य बना दिया है।'[4]

उन्होंने टोकियो के कॉमर्स कॉलेज में एक बहुत ही महत्वपूर्ण व्याख्यान दिया जिसका विषय था- 'सफलता का रहस्य'। जब राम ने 'उन्नति के रहस्य' पर व्याख्यान दिया और नारायण स्वामी उस व्याख्यान के नोट अपने साथ लिखकर लाये तो उन्होंने दो घंटे के भीतर उन नोटों को सविस्तार बिलकुल राम की भाषा ही में लिख दिया। उनके इस स्पष्ट प्रसादमय और मनोरंजक लेख को देखकर स्वामी राम बड़े आश्चर्यचकित और प्रसन्न हुए और उन्हें पीठ पर शाबाशी दी।[5]

तपस्वी संन्यासी स्वामी रामतीर्थ के

---

3. सन्तराम वत्स्य- स्वामी रामतीर्थ, पृ० ९२-९३ 4. श्याम जी गोकुल वर्मा-स्वामी रामतीर्थ (जीवनी), पृ० ७६, ७७
5. श्री नारायणस्वामी-स्वामी रामतीर्थ जीवनचरित, पृ० ३५९

विलक्षण प्रभाव का वर्णन प्रोफेसर सरदार पूर्ण सिंह ने अपने आत्मचरित में बड़ी निष्ठा के साथ किया हुआ है।

स्वामी राम के सम्पर्क में आने के बाद जब पूर्ण सिंह के सब प्रकार के मनोगत संशय और संदेह निवृत्त हो गए और उनका अन्त:करण संतोष व शांति पा गया, तो वह सब विद्यार्थियों के समक्ष राम से पूछने लगे कि- 'अब मुझे क्या करना चाहिए ? राम ने उत्तर दिया- 'अपने अंत:करण से यह प्रश्न पूछो, और उसका अनुगमन करो।' उन्होंने फिर दूसरी बार यही प्रश्न किया और राम ने फिर वही उत्तर दिया। थोड़ी देर बाद पूर्ण ने तीसरी बार फिर वही प्रश्न स्वामी राम से किया, तो स्वामी राम ने सभी विद्यार्थियों को संबोधन करके कहा- 'कहीं आप लोग यह न समझ बैठें कि राम मिस्टर पूर्ण के लिए जो विचार करेगा, वही आप के लिये भी उपयुक्त और लाभदायक होगा। ऐसा कदापि नहीं, आप के जीवन का मार्ग एक दूसरे के साथ और विशेषत: मि० पूर्ण के जीवन के साथ संबंध नहीं पा सकता।' फिर मि० पूर्ण को संबोधित करके कहा- संन्यास ग्रहण करके मानव जाति की सेवा करो। यही मार्ग आप के जीवन के लिये अत्यन्त हितकर और उत्तम होगा। उनके श्रीमुख से निकले हुए इन शब्दों का उनके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा।[6]

स्वामी जी जापान में २५ दिनों तक रहे। टोकियो से सानफ्रांसिस्को (अमेरिका) के लिए विदा होने से पूर्व उन्होंने कहा 'मैं जापान में 'पूर्णमद: पूर्णमिदम्' गाता हुआ जहाज से उतरा था और 'पूर्णमद: पूर्ण मिदम्' गाता हुआ ही जा रहा हूँ। यह संस्कृत का उनका प्रिय श्लोक था।

उन्होंने कहा था- 'मैं सर्वधर्म सम्मेलन के लिए नहीं निकला था, मैं तो आया था पूरन को मार्ग दिखाने।[7]

कालान्तर में यही सरदार प्रोफेसर पूर्ण सिंह साहित्य महारथी आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी युगीन प्रसिद्ध निबंधकार और संतसाहित्यकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। इनका जनम १७ फरवरी, १८८१ ई० को एबटाबाद (अब पाकिस्तान) जिलान्तर्गत सलहड़ ग्राम में हुआ था।

प्रो० पूर्ण सिंह अप्रतिम प्रतिभा के धनी थे। जब वे जापान उच्च शिक्षा लेने गये थे, तब भी उन्होंने भारत की आजादी के दीवानों के साथ मिलकर वहां से अंग्रेजी में एक अखबार

6. श्री नारायणस्वामी-स्वामी रामतीर्थ जीवनचरित, पृ० ३५९-३६०

7. सन्तराम वत्स्य- स्वामी रामतीर्थ, पृ० ९६

निकाला– 'थंडरिंग डॉन'। वहीं पर अंग्रेजी में एक उपन्यास लिखा था, जिसमें अंग्रेज शासकों के अत्याचार तथा भारत की सामाजिक अवस्था का चित्रण था। यह उपन्यास जापान में ही छपा था। इसकी कोई प्रति आज उपलब्ध नहीं है। वे सन् १९०४ ई० में भारत लौटे।

हिन्दीसंसार प्रोफेसर पूरन सिंह को अध्यापक पूर्णसिंह के रूप में जानता है। उन्हें मात्र पचास वर्ष की आयु प्राप्त हुई, परन्तु इस अवधि में ही उन्होंने अपनी समर्थ लेखनी से पंजाबी, अंग्रेजी और हिन्दी में जो साहित्य सृजन किया, उसकी गुणवत्ता का अनुमान तो इसी बात से लगाया जा सकता है कि हिन्दी में प्रकाशित उनके मात्र छह निबंध ने उन्हें हिन्दी निबंध साहित्य में अमर बना दिया है।

संत साहित्यकार प्रोफेसर पूर्ण सिंह ने अपनी समर्थ लेखनी से पंजाबी भाषा में तीन कविता संग्रह लिखे हैं–

(1) खुल्हे मैदान (2) खुल्हे घुंड और

(3) खुल्हे असमानी रंग।

अंग्रेजी भाषा में उनकी सात पुस्तकें उपलब्ध हैं।

(1) बुक ऑफ टेन मास्टर्स (2) स्टोरी ऑफ स्वामी राम (3) सिस्टर्स ऑफ द स्पिनिंग ह्वील (4) नरगिस (5) सेवन बास्केट्स ऑफ फ्लावर्स (6) स्पिरिट ऑफ ओरिएंटल पोएट्री (7) स्पिरिट ऑफ द सिख्स।

हिन्दी में इनके केवल छः निबंध उपलब्ध हैं। जिनके भाव, भाषा और शैली के कारण हिन्दी निबंध साहित्य में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। 'सरदार पूर्णसिंह के निबंध' नामक पुस्तक में ये सभी निबंध संकलित हैं।

हिन्दी के महान् आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में अध्यापक पूर्ण सिंह के लिखे तीन निबंधों का उल्लेख किया है- (1) मज़दूरी और प्रेम (2) सच्ची वीरता और (3) आचरण की सभ्यता। ये तीनों निबंध आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पादकत्व 'सरस्वती' मासिक साहित्यिक पत्रिका में सन् १९०९ से सन् १९१२ ई० के दौरान लिखे गये और प्रकाशित हुए। इनके अतिरिक्त 'कन्यादान' 'पवित्रता' और 'अमेरिका का मस्त जोगी कवि वाल्ट ह्विटमैन' निबंध उपलब्ध है।

उल्लेखनीय है कि अगस्त, सन् १९०६ ई० में हिमालय और गंगा के प्रेमी स्वामी रामतीर्थ हिमालय स्थित वसिष्ठाश्रम में निवास करते थे। उन्हीं दिनों प्रो० पूर्ण सिंह स्वामी जी के दर्शनार्थ टिहरी (मध्य हिमालय) से वसिष्ठाश्रम गये थे। दर्शन और वार्तालाप होने

के उपरान्त पूर्ण जी टिहरी आने के लिये निकले तब स्वामी जी लगभग एक मील तक उन्हें पहुंचाने गये थे। रास्ते में चलते हुए धीमी आवाज में स्वामी जी ने पूर्ण जी से अपने देह-त्याग के विषय में कह दिया था।

कुछ समय पश्चात् ही स्वामी रामतीर्थ के पार्थिव शरीर ने दीपमालिका के दिन १७-१०-१९०६ ई० को पूर्वाह्न वेला में टिहरी के समीप सेमलारु नामक स्थान पर जो कि आज एक बहुत बड़े डैम के रूप में परिवर्तित हो गया है, भिलंगना में नाटकीय ढंग से जल समाधि ले ली। उनकी मृत्यु ने प्रो० पूर्ण सिंह के जीवन को बहुत उदासीन बना दिया। प्राय: वे उस उदासी में रात की रात जागकर बिता देते थे।

प्रो० पूर्ण सिंह ने सन् १९०६ में देहरादून के इम्पीरियल फोरेस्ट रिसर्च इन्स्टीच्यूट में कार्य किया। बाद में इनकी नियुक्ति लाहौर के विक्टोरिया डायमंड जुबली हिन्दू टेकनिकल इंस्टीच्यूट के प्रिंसीपल पद पर हो गयी। संसार के एकमात्र विलक्षण ईश्वरोन्मत्त संत स्वामी रामतीर्थ के विद्वान् शिष्य, कवि, लेखक सरदार प्रो० पूर्ण सिंह अपने अन्तिम समय में देहरादून में रहे और वहीं पर ३१ मार्च, १९३१ ई० को प्रभु को प्रिय हो गए।

रामतीर्थकुंज, ग्राम+पो० रांकोडीह, वाया-कोसी कालेज,
खगड़िया, जि० खगड़िया (बिहार) 851205

उत्तररामचरित एवं कुन्दमाला नाटक में अंगीरस-साम्य

-डॉ० लक्ष्मी राणा

संस्कृतसाहित्य में नाटक का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है, यह एक गौरवपूर्ण विधा है। इसमें लोकघटित वृत्तान्त का वर्णन गद्य एवं पद्य दोनों के माध्यम से होता रहा है और मानव को जो रसानुभूति होती है, वह रस एवं आनन्द मानव के हृदय में पहले से ही विद्यमान रहता है। नाटक के माध्यम से सामाजिक जन के हृदय में उपस्थित उस रस एवं आनन्द को जागृत किया जाता है। मानव-हृदय में उपस्थित आनन्द उसके हृदय की सीमाओं को नहीं रोक पाता अपितु सीमाओं को तोड़ता हुआ विस्तार को प्राप्त हो जाता है, अर्थात् मनुष्य का हृदय आनन्द का अपार सागर है जिसकी कोई सीमा हो ही नहीं सकती। इसी आनन्द के सागर को कवियों ने अपनी मेधा से जानने की कोशिश की है। वेदों से लेकर आधुनिक काल तक इस आनन्द के सागर की चर्चा पर्याप्त मात्रा में हुई है, महर्षि वेदव्यास तथा महर्षि वाल्मीकि दोनों महान् कवियों ने इस आनन्दमय रस की चर्चा अपने-अपने लेखन में की है, **रसो वै सः।**[1]

नाटक में रस का स्थान सर्वोत्कृष्ट रहा है। साहित्यदर्पणकार ने कहा है-**वाक्यं रसात्मकं काव्य।** इसके पश्चात् दशरूपककार रस का निरूपण करते हुए कहते हैं-

विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिःस्थायीभावः सचेतसाम्।।[2]

इसी के साथ ही काव्यप्रकाश में आचार्य मम्मट ने भी रस का निरूपण किया है।[3]

नाट्यशास्त्रकार भरतमुनि ने भी रससूत्र का प्रतिपादन करते हुए कहा विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से ही रस की निष्पत्ति होती है।[4]

विभाव, अनुभाव, सात्विकभाव और व्यभिचारीभाव द्वारा स्थायीभाव को यदि आस्वादन के योग्य बना दिया जाय तो यही स्थायीभाव रस कहलाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी रस का अद्भुत स्रोत देखने को मिला है रामायण करुणरस प्रधान महाकाव्य है। इसमें करुणरस का अद्भुत रूप वाल्मीकि के मुख से निकली हुई

1. तैत्तिरीयोपनिषद्
2. दशरूपक 1.6
3. काव्यप्रकाश - 4.27-28
4. ना.शा.6.7

संस्कृतमयी वाणी [5] में देखने को मिलता है जिस आधार पर उन्होंने पूरे रामायण की रचना की है।

रामायण करुणरस से ओत:-प्रोत है यह उत्तरकाण्ड में और भी मनोरम प्रतीत होता है जब राम द्वारा परित्यक्ता सीता अकेली वन जाती है तो वह दु:ख से मूर्छित हो जाती है तत्पश्चात् कहती है-

सा मुहूर्तमिवासंज्ञा वाष्पपर्याकुलेक्षणा।
लक्ष्मणं दीनया वाचा उवाच जनकात्मजा।।
मामिकेयं तनुर्नूनं सृष्टा दुःखाय लक्ष्मण।
धात्रा यस्यास्तथामेऽद्यदुःखमूर्तिः प्रदृश्यते।।[6]

भवभूति एवं दिङ्नाग नाटककार ने रामायण को आधार बनाकर उत्तररामचरितम् एवं कुन्दमाला नाटक की रचना की है।

भवभूति ने उत्तररामचरितम् नाटक में मुख्यरस के रूप में करुणरस को लिया है अन्य रसों को होते हुए भी उन्होंने अपने नाटक को करुणरस की प्रधानता देते हुए लिखा कि वस्तुत: रस तो एक ही है और वह करुणरस है शेषरस तो करुणरस निमित्त भेद से भिन्न होकर पृथक्-पृथक् से प्रतीत होते है। जैसे एक ही जल उपाधिभेद से भंवर, बुद्बुद और तरंगरूप विकारों का आश्रय बनता है, परन्तु वह जल ही है।[7]

साहित्यदर्पणकार ने भी करुणरस को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है-

इष्टनाशादनिष्टाप्तौ करुणाख्यो रसो भवेत्।
धीरैः कपोतवर्णोऽयं कथितो यमदैवतः।।[8]

भवभूति ने प्रस्तावना में ही बीज का वपन करुणरस के द्वारा ही सूचित कर दिया है-

देव्या अपि हि वैदेहनाः सापवादो यतो जनः।
रक्षोगृहस्थितिमूलमग्निशुद्ध त्वनिश्चयः
यदि पुनरियं किं वदन्ती महाराजं
प्रति स्यन्देत ततः कष्टं स्यात्।। [9]

नाटककार ने बड़ी ही चमत्कारिक प्रतिभा से नायक-नायिका के प्रथम बाक्यों में ही करुणरस का संचार किया है। अनायास ही सीता-परित्याग के कारण उद्विग्न हो जाते हैं। पुन: चित्रदर्शन के समय में राम के पूछने पर लक्ष्मण कहते हैं कि ये चित्र आर्य की अग्नि शुद्धि तक ही बने हैं। यहां पर नाटककार ने करुणरस को सूक्ष्म रूप से प्रस्तुत किया है। किन्तु करुणरस का पूर्ण रूप से उद्गम तो दुर्मुख के उस वाग्वज्र द्वारा हुआ है जिसको सुनते ही राम मूर्च्छित हो जाते हैं, तथा शीघ्र ही अपने कर्त्तव्य-पालन का निर्णय करने के लिए तत्पर हो जाते हैं, जिससे वह कठोरता उनके हृदय को व्याकुल कर देती है।[10]

---

5. वाल्मीकि रा. 1.16
6. रा० र० उ० का० 48 सर्ग 2-3
7. उत्तररामचरित 3.47
8. स०द०प०-श०स० 22 पृ०स०-261
9. उ० रा० च० 0/6
10. वही, 1/47

अन्त में राम को सीता-परित्याग का निर्णय भी लेना पड़ा जिसका उन्हें अत्यधिक दुःख होता है, उन्हें सारा संसार शून्य-सा प्रतीत होता है। जीवन निष्फल दिखाई पड़ता है स्वयं को असहाय जैसा अनुभव करने लगते हैं इससे उनका मर्मस्थल पीड़ित हो जाता है। सीता परित्याग के निर्णय पर कहते हैं कि मैंने ऐसा पाप किया है कि गर्भवती सीता को हिंसक पशुओं से व्याप्त वन में खाने के लिए छोड़ दिया-

विस्रम्भादुरसि निपत्य जातनिद्रामुन्मुच्य
प्रियगृहिणी गृहस्य लक्ष्मीम्।
आतंकस्फरितकठोरगर्भगुर्वी कव्याद्ययो .
बलिमिव दारूणः क्षिपामि।।[11]

राम का ह्दय दुःख व शोक से व्याकुल हो जाता है सम्पूर्ण नाटक को करुणरस के सागर में ओतः-प्रोत कर देता है। सीता के द्वारा कहा एक-एक वाक्य व शब्द करुणरस के इस लहराते सागर में छोटी-बड़ी तरंगों को अग्रसर करता हुआ प्रतीत होता है। गम्भीरता के कारण अव्यक्त अन्दर छिपी हुई गाढ़ वेदना से युक्त राम का करुणरस पुटपाक के समान है।[12]

परित्याग के पश्चात् सीता की दशा दयनीय-सी हो गयी है तथा उनकी दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं-

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं दधती
विलोलकबरीकमाननम्।
करुणास्य मूर्तिरथवा शरीरिणी
विरहव्यथेव वनमेति जानकी।।[13]

इस नाटक में भवभूति ने सीता की विरह वेदना तो दिखायी है साथ ही राम का दुःख एवं विलाप भी दिखाया है। उनके दुःख के कारण सारी प्रकृति भी दुःख से रुदन करने लगती है।

कुन्दमाला नाटक- दिङ्नाग ने अपने कुन्दमाला नाटक में अंगीरस के रूप में करुणरस को लिया है। जबकि अन्य रस अंगरूप में देखने को मिलते हैं उनके नाटक में करुणरस आत्मा के रूप में दृष्टिगत होता है। इनके नाटक के प्रथम अंक में ही करुणरस की प्रतीति होती है। जब लक्ष्मण सीता को वन में छोड़ते हैं और राम का सन्देश सुनाते हैं तब सीता को ज्ञात होता है कि उनका राम के द्वारा परित्याग किया गया है यह जानकर वे अत्यन्त दुःखी होती हैं तथा विलाप करते हुए कहती है-

हा तात! आर्यकोसलाधिप! अद्योपरतोऽसि।

वे विलाप करते हुए मूर्च्छित हो जाती हैं, लक्ष्मण द्वारा आश्वस्त की जाती हैं, वे सीता के करुण रुदन को सुनकर दुःखी होते हैं, समस्त सृष्टि एवं प्राणी उनके विरह से उनके समान ही व्याकुल से दिखायी देते हैं।[14]

लक्ष्मण के चले जाने पर वे स्वयं को

11. उ० रा० च० 1/49
12. वही, 3.11 3. वही, 3/4
14. कुन्दमाला नाटक- 1/18

धिक्कारते हुए दु:खी होती है वह स्वयं को अनाथ कहते हुए करुण रुदन करती है।[15] करुण रुदन सुनकर मुनिकुमार वहां आते हैं।

नाटक के चतुर्थ अंक में कण्व के साथ राम को नैमिषारण्य वन दिखाया गया। कण्व उन्हें वन की रमणीयता को दिखाते हुए उनका मन बहलाने का प्रयास कर रहे हैं किन्तु वन की रमणीयता भी उनके मन को आनन्दित नहीं कर पा रही है, उन्हें वन को देखकर सीता का स्मरण हो आता है जिससे वह और भी दु:खी एवं शोक से व्यथित हो रहे हैं। उनकी आंखों से अश्रु बह रहे हैं, आहुति से उठी हुई धूमराशि भौरों की तरह उन्हें अत्यधिक व्याकुल कर रही है। इस पर राम कण्व से कहते हैं कि धुएं से मेरी आंखें अधिक आकुलित हो गयी हैं, क्योंकि राम तो सीता के विरह में नित्य ही अश्रु बहा रहे थे धुएं से आँख पीड़ित होने का बहाना बनाते हुए कहते हैं-

सीताविरहबाष्पेण क्षरता नित्यदु:खिते।
बाढमायासिते भूयो धूमेन मम लोचने।।[16]

सीता राम को दु:खी देख अपने दु:ख को भूल जाती है जो कि असम्भव है, जब वह मूर्च्छित होते हैं तब सीता कपड़े से उन पर हवा करती हुई कहती है-

कथं पुनरप्यार्यपुत्रो मोहंगत:।[17]

राम चेतन अवस्था में आते हैं, तब वह अपने को धिक्कारती हुई कहती है-

हा धिक्! हा धिक्! ममाद्यन्यापाकृत एवमधिक्षिप्यत आर्यपुत्र:।[18]

कुन्दमाला नाटक में करुणरस का इतना प्रभाव देखने को मिलता है कि उन्हें देख पेड़-पौधे, प्रकृति भी शोकग्रस्त हो जाती है तथा सामाजिक जन का हृदय भी शोक के कारण व्यथित होकर भाव-विभोर हो जाता है और सामाजिक जन की नाटक के अन्त तक देखने की उत्सुकता बनी रहती है।

भवभूति एवं दिङ्नाग के नाटक करुणरस प्रधान नाटक हैं दोनों में अंगीरस करुणरस है। दोनों ही नाटकों के नाटककारों ने करुणरस को बड़ी सूक्ष्मता से दिखाया है इनके नाटकों को देखकर सामाजिकजन शोक एवं दु:ख से व्याकुल होकर उनके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगती है, सामाजिक जन इस नाटक को देख इतने भाव-विभोर हो जाते हैं कि उनकी अन्त तक नाटक को देखने की उत्सुकता बनी रहती है।

संस्कृत विभाग, स्वामी रामतीर्थ परिसर, बादशाहीथौल
टिहरी (गढ़वाल) उत्तराखण्ड

15. कुन्दमाला नाटक- 1/27
16. कुन्दमाला नाटक- 4/12
17. वही, 4/ पृष्ट-112
18. वही, 6/ पृष्ट-194

विदुरनीति के ज्ञान-कमल

—श्री ताराचन्द आहूजा

महापुरुषों का कथन है कि अज्ञान मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है और ज्ञान सबसे बड़ा मित्र। जीवन में दुःख, पीड़ा, संताप, विपत्ति, अन्याय, अभाव और आलस्य अज्ञान के ही फलक हैं। यदि जीवन में ज्ञान का उदय हो जाए तो जीवन में सारी जटिल समस्याएं स्वयं मिटने लगती हैं। इसलिए मनुष्य को अपनी बुद्धि के द्वारा अज्ञान का नाश करने का उपाय करना चाहिए। ज्ञान पुस्तकें पढ़ने अथवा महापुरुषों के उपदेश सुनने मात्र से अवतरित नहीं होता। श्रवण, सत्संग तथा स्वाध्याय ज्ञान अर्जित करने के साधन अवश्य हैं, लेकिन उनके द्वारा प्राप्त ज्ञान को जब तक चिन्तन-मनन द्वारा आत्मसात् नहीं किया जाता तब तक वह ज्ञान अपना फल नहीं दे सकता। ज्ञान जब जीवन में उतरता है तभी उसका वास्तविक लाभ प्राप्त होता है अन्यथा वह ज्ञान बोझ मात्र बनकर रह जाता है। ज्ञान से प्रेम, दया, करुणा, क्षमा, संतोष, धर्म पालन आदि गुणों का विकास होता है। जीवन में इन गुणों के प्रवेश होने पर लोक एवं परलोक दोनों सुधर जाते हैं। विदुरनीति कहती है कि केवल धर्म ही परम कल्याणकारी है, केवल क्षमा ही परम सन्तोष प्रदान करने वाली है तथा केवल अहिंसा ही सुख का मूल है।[1]

महाभारत काल के महान् संत, उपदेष्टा, दूरद्रष्टा और नीतिकार महात्मा विदुर ने मनुष्य के जीवन को उत्कृष्ट बनाने, जीवन में सुख-शान्ति की सरिता बहाने और जीवन को आलोकित करने वाले ज्ञान के ऐसे दीप प्रज्वलित किए हैं जिनके उजाले में चलकर मनुष्य अपने सम्पूर्ण जीवन को प्रकाशमय बना सकता है। जीवन को प्रकाशित कर उसे चमत्कृत करने वाले महात्मा विदुर की महान् नीति के अष्टदीप वे ज्ञान कमल हैं- जो मनुष्य के अंतस् में ही आठ गुणों के रूप में विद्यमान हैं। ज्ञान के उन अष्टदीपों का निरूपण करते हुए विदुरजी कहते हैं।[2] ये आठ गुण मनुष्य को संसार में प्रदीप्त करते हैं, चमकाते हैं, तेजस्वी

1. विदुरनीति 1/57

2. वही.

बनाते हैं। लोक और परलोक में मनुष्य इन्हीं के द्वारा सुख प्राप्त करता है। आइये ! इन गुणों के सम्बन्ध में थोड़ी विस्तार से चर्चा करें। प्रथम गुण है- **प्रज्ञा**- यानी सुबुद्धिविदुरजी कहते हैं कि मनुष्य को बुद्धिमान् तथा विचारशील होना चाहिए, सोच समझकर चलना चाहिए और बुद्धि को धर्म से जोड़ना चाहिए। धर्म से जुड़ी बुद्धि व्यक्ति के आत्म-कल्याण करने के साथ-साथ समाज तथा सम्पूर्ण जगत् का कल्याण करती है। रावण बुद्धिमान् तो था, वेदों का ज्ञाता एवं भाष्यकार भी था परन्तु धर्म से जुड़ा हुआ नहीं था। अधर्मयुक्त बुद्धि होने के कारण वह स्वयं तो नष्ट हुआ ही साथ ही वह अपने परिजनों और देशवासियों को भी ले डूबा। इसलिए बुद्धि को सुबुद्धि के मार्ग पर आरूढ़ करना चाहिए। इस कार्य में धर्म का पालन हमारी सहायता करता है।

कौल्य- अर्थात् कुल के महान् संस्कारों का विकास। संस्कारों द्वारा ऐसी भावी पीढ़ी का निर्माण हो, जो शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक रूप से पूर्ण विकसित होकर जीवन की चुनौतियों का साहसपूर्वक सामना करने में सक्षम हो और एक आदर्श एवं अनुकरणीय जीवन जी सके। साथ ही परिवारों में ऐसे संस्कारक्षम व आनन्दमय वातावरण और ऐसे परिवेश की संरचना हो जो परिवारजनों के चारित्रिक, भावात्मक एवं आध्यात्मिक उत्थान व उत्कर्ष में सहायक हो और जिससे परिवार में एवं परिवार के माध्यम से समाज में समरसता, सहकारिता, सहिष्णुता एवं सौहार्द्र की भावना उत्पन्न हो। कौल्य गुण से कुल एवं परिवार का नाम तो होगा ही, साथ ही पितृ ऋण, आचार्य ऋण तथा देव ऋण, इन तीनों ऋणों से भी मुक्ति मिलेगी, जो हमें जन्म के साथ विरासत में मिलते हैं।

दम- दम का अर्थ है मन की प्रवृत्तियों का दमन करना। मनुष्य का मन इन्द्रियों का दास बनकर विषयों में भटकता रहता है और इस आपाधापी में व्यक्ति अपने जीवन के परम-चरम लक्ष्य को विस्मृत कर देता है। अतः मनुष्य अपने चंचल मन को वश में रखे, संयमित जीवन व्यतीत करे। संयम कई प्रकार का होता है जैसे आहार में संयम, वाणी में संयम, श्रवण में संयम, व्यवहार में संयम आदि। जब व्यक्ति मन का निरोध व दमन करना सीख जाता है, अपने आपको नियंत्रित कर लेता है तब वह मानव से महामानव बन जाता है। गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है कि मन को वश में करना कठिन अवश्य है पर असम्भव नहीं। इसको अभ्यास तथा वैराग्य जैसे साधनों द्वारा

नियन्त्रित किया ज़ा सकता है।

श्रुतम्- इसका अर्थ है शास्त्र ज्ञान का श्रवण। धर्मशास्त्र पढ़ते-पढ़ते तथा महापुरुषों का सत्संग करते-सुनते हुए व्यक्ति के जीवन में चमत्कारिक परिवर्तन हो जाता है। ऐसा देखा गया है कि किसी बड़े अपराधी को दुनिया की पुलिस नहीं सुधार पाई, राजा या शासक का दंडविधान भी नहीं सुधार पाया लेकिन महापुरुषों की दिव्यवाणी व सत्संग ने उसे एक ही झटके में परिवर्तित कर दिया। कोई एक बात ही व्यक्ति के दिल पर ऐसी चोट कर गई कि पूरा जीवन ही बदल गया। सत्संग व्यक्ति के विवेक को जाग्रत कर देता है। सज्जनों की संगति मिलती भी कठिनाई से है। पर जब मिलती है तब उससे सत्य-असत्य का बोध हो जाता है। इसलिए श्रवण का गुण अतिशय महत्वपूर्ण है। शर्त केवल इतनी है कि हम केवल वहीं सुनें जो हमारे लिए हितकारी और उपयोगी हो। व्यर्थ की बातें सुनने से कोई लाभ नहीं होगा वरना अनर्थ होने की संभावना ही रहेगी।

पराक्रम- अर्थात् वीरता। मनुष्य अपने जीवन की विभिन्न समस्याओं से घबराकर भागे नहीं प्रत्युत उनका वीरता के साथ सामना करे। वह महावीर बने ताकि समस्या समाधान बन जाए। मृत्युलोक में हमें द्वन्द्वों में तो जीना ही पड़ेगा। हम चाहे कितना भी प्रयत्न क्यों न करलें, तब भी सुख-दुख, मान-अपमान, हानि-लाभ, अनुकूलता-प्रतिकूलता तो जीवन में आएगी, उससे बचा नहीं जा सकता। यह तो माया-जगत् के अभिन्न अंग हैं, लेकिन हमें इन द्वन्द्वों का सफलतापूर्वक सामना करने का गुण अपने अन्दर विकसित करना चाहिए अन्यथा जीना दूभर हो जाएगा। हम सदैव समता में जीयें- सुख में फूले नहीं और दुख में तड़पे नहीं। यह कला हमें विकसित करनी होगी। वीरता का गुण उन द्वन्द्वों का मुकाबला करने में हमारी मदद करता है।

अबहुभाषिता- यानी कम बोलना। मनुष्य को मितभाषी होना चाहिए और श्रोता अधिक। परमात्मा ने हमें शायद इसीलिए जिह्वा एक दी है और कान दो दिए हैं। जो व्यक्ति केवल आवश्यक होने पर ही नपा-तुला बोलता है, वही समाज में सम्मान पाता है। मौन में अपार शक्ति होती है। अधिक बोलने से ऊर्जा तो अधिक खर्च होती ही है, कई बार मुंह से गलत बात निकल जाने पर अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है और लेने के देने पड़ जाते हैं। वर्षों पुराना सम्बन्ध पल भर में धराशायी हो जाता है। कहावत है- **तलवार का घाव भर जाता है लेकिन वाणी का घाव जीवनभर नहीं भरता**। हम अच्छा करें परन्तु उसका गुणगान

न करें, अच्छे कार्यों की महिमा दूसरों को करने दें। इसी में महानता है। कहा भी है-

बड़े बड़ाई न करें, बड़े न बोलें बोल।
हीरा मुख से न कहे, लाख हमारो मोल।।

दान- दान करना ईश्वरीय गुण है। परमात्मा की सृष्टि में पेड़-पौधे, नदी, पर्वत सभी मनुष्य को कुछ न कुछ दे रहे हैं। देवसमूह तो देने में ही जुटा हुआ है। सूर्यदेव हमें ऊर्जा और प्रकाश देता है। इन्द्रदेव व वरुणदेव वर्षा करके हमें जल देते हैं, पृथ्वी माता वनस्पति एवं अनेक प्रकार की अन्य वस्तुएं हमारे लिए सुलभ कराती है, वायुदेवता हमें प्राणशक्ति देता है। जो व्यक्ति केवल अपने लिए जीता है, किसी और के उपयोग में नहीं आता है, उस व्यक्ति का जीवन गौण माना जाता है। दान का अर्थ है दीन-हीन की सहायता करना। इसलिए इसे दिव्य गुण कहा गया है। दान से धन पवित्र होता है। केवल संचय करते रहने से वह अहंकार को ही बढ़ाता है जैसे यदि कुएं का जल न निकाला जाए तो उसमें सडांध आने लगती है। हमें धनादि जो कुछ भी मिला है वह सब परमात्मा की देन है। अतः मनुष्य को उदारतापूर्वक दान देना चाहिए।

कृतज्ञता- कृतज्ञता का अर्थ है दूसरे के द्वारा किए गए उपकार को मानना। यदि कोई हमारे लिए थोड़ा-सा भी उपकार करता है, हमारे प्रति सद्भावना रखता है, तो हमारा यह परम कर्तव्य बनता है कि हम उसका उपकार मानें, उसके प्रति सद्भावना रखें, आभार व्यक्त करें। हमें जीवन में हर समय किसी न किसी सहायता की आवश्यकता पड़ती ही रहती है। प्रतिभा और क्षमता होने के बावजूद दूसरों के सहयोग के बिना कुछ कर पाना संभव ही नहीं है। काम निकल जाने के बाद पहचानने से इन्कार करना कृतघ्नता है। हमारी सारी भौतिक एवं अभौतिक प्रगति का आधार है पारस्परिक सहयोग और यह सहयोग का वृक्ष तभी बढ़ता है जब हम उसे कृतज्ञतारूपी जल से सींचते रहें। हमें अपने सभी सहयोगियों के प्रति उदारतापूर्वक कृतज्ञता ज्ञापित करनी चाहिए, इसमें कंजूसी के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए। जो व्यक्ति कृतघ्नता का व्यवहार करता है, उसका समाज में तिरस्कार होता है और भविष्य में सहयोग भी नहीं मिलता। इसी को ध्यान में रखते हुए महात्मा विदुरजी का कथन है कि- जो मनुष्य ज्ञान के उपर्युक्त अष्टदीपों को प्रदीप्त कर लेता है, उसका जीवन सुखमय और आनन्दमय बन जाता है।

4/114, एस.एफ.एस. अग्रवाल फार्म, मानसरोवर, जयपुर-302020

उपनिषदों में स्वच्छ जीवन-दर्शन की परिकल्पना

–सुश्री रजनी बाला

मानव-जीवन की यात्रा के दो अंग हैं सभ्यता और संस्कृति। सभ्य शब्द सभा (समाज) शब्द से बना है जिस बात को समाज पसंद करता है वह सभ्यता है।

संस्कृति इससे बहुत ऊपर है। मानवीय साधना के पांच सोपान हैं- शरीर, आत्मा, मन, बुद्धि और अध्यात्म। इन्हीं की सिद्धि का नाम संस्कृति है।

संस्कृति का अर्थ है संस्करण, परिमार्जन, शोधन, परिष्करण अर्थात् ऐसी क्रिया जो व्यक्ति में स्वच्छता का संचार करे। अनेक व्यक्ति मिलकर समाज तथा जाति का निर्माण करते हैं। अत: (निर्मल) स्वच्छ एवं संस्कृत व्यक्तियों का समाज तथा राष्ट्र भी संस्कृत होते हैं और उनके स्वच्छता विधायक तत्त्व संस्कृति के मूल सूत्र बन जाते हैं। मानव-मानस में सत्संस्कारों द्वारा विकास की भूमिका तैयार की जाती है। जिस मानस का मन जितना ही अधिक विकार रहित विशुद्ध है, उतना ही अधिक वह संस्कृत कहा जाता है।

विशुद्धि, स्वच्छता, परिष्कृति एक मानव से बढ़कर जैसे समाज तथा जाति की सम्पत्ति बनती है, उसी प्रकार विश्वभर की थाती भी बन सकती है।

उपनिषद् की रयि का पोषण आन्तरिक तथा बाह्य दोनों ही क्षेत्रों में स्वच्छता पर आश्रित है। स्वच्छता, व्यक्ति, कुल, समाज, जाति तथा विश्वभर के समस्त आदर्शों की प्रतिष्ठा करती है। ये आदर्श परम्परा में परिपालित तथा पोषित होकर अनेक पीढ़ियों तक चलते रहते हैं आगे आने वाली संतति को प्रेरणा देते रहते हैं।

स्वच्छता वस्तुत: मानवता का मेरुदण्ड है। वह शिष्टता, सौजन्य तथा शील की आधारशिला है तथा मानव-महिमा का उच्च स्वर से उद्घोष करती है।

स्वच्छ व्यक्ति संकीर्ण नहीं, सहिष्णु होता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त को अपनाता है। उपनिषदों में भी स्वच्छता का मंथन किया गया है। इसमें वैदिक ज्ञान तथा चिन्तन सन्निविष्ट है। अध्यात्म-तत्त्व का मूल आधार उपनिषद् ही है।

कठ तथा ईश उपनिषदों में कहा गया है कि मनुष्य की स्वार्थी प्रवृत्तियां जब समाप्त हो जाती हैं तब वह अमृत बनकर ब्रह्मपद को प्राप्त करता है और वांच्छाओं और कामनाओं की समाप्ति विद्या और ज्ञान से ही होती है। 'मुण्डक' और 'बृहदारण्यक' उपनिषदों में कहा गया है कि ब्रह्म का ज्ञान ब्रह्म है, जिसमें प्राणों का उत्क्रमण नहीं होता (३.२.९., ४.४.६.) मनुष्य इसी संसार में और इसी जीवन में मुक्ति प्राप्त करता है। अतः उसके लिए सत्य का ज्ञान अपेक्षित है। स्वच्छ सदाचार से उसे सत्य का आभास मिलता है।

छान्दोग्य उपनिषद् के ऋषि कहते हैं कि- 'दान, तप, सदाचरण, किसी को हानि न पहुंचाने की प्रवृत्ति और सत्यभाषण जीवन रूपी यज्ञ की दक्षिणा है (३.२७.४)।'

मुण्डकोपनिषद् में कर्म को ही अमृत कहा गया है। 'ईशोपनिषद्' में कर्म के साथ-साथ ज्ञान की भी अभिव्यंजना की गई है। ज्ञान के सहयोग से कर्म की विशिष्टता बढ़ जाती है। वस्तुतः कर्म और ज्ञान मिलकर स्वच्छ व्यक्तित्त्व का विकास करते हैं। मनुष्य का आश्रम-जीवन उसके कर्म की अभिव्यक्ति करता है तथा उसे सदाचार, स्वाध्याय, तप, सत्य, इन्द्रिय-संयम के मार्ग पर अग्रसारित करता है।

यह भी अवधेय है कि 'ईशावास्योपनिषद्' में लालच का त्याग करने की बात स्वीकार की गयी है। ईश्वर ने ही जीव के लिए सब भोग बनाए हैं। अतः सब भोग, ऐश्वर्य वैभव उसी के हैं। मनुष्य को इनका त्याग करना चाहिए-

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।
(यजु० ४०.१)

संसार की विषय-वासनाओं का त्याग करना चाहिए। लालच न करके त्यागभाव से परमपिता परमात्मा द्वारा प्रदत्त वस्तुओं का उपयोग करना चाहिए।

सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन्। (ऋ.९.७३.२)

सत्य बोलना ऐसी नाव है जिसपर बैठकर सत्कर्म करने वाले भवसागर से पार हो जाते हैं। अन्दर बाहर से एक बनो-

यदन्तरं तद्बाह्यं यद् बाह्यं तदन्तरम्।
(अ०२.३०.४)

जैसे अन्दर मन में हो, वैसा ही बाहर के व्यवहार में हो और जैसा बाहर का व्यवहार हो, वैसा ही मन में भी हो।

यजुर्वेद में प्रार्थना की गई है कि- 'हे सर्वोपत्पादक परमेश्वर! हमें दुर्गुणों से बचाइए और जो सद्गुण हैं, भद्र हैं, कल्याणकारक हैं, वही हमें प्राप्त हों' (यजु. ३०.३)

अथर्ववेद में एक स्थान पर कहा गया कि- ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए क्योंकि ये हृदय

को शोक से भरकर जला डालती है। द्वेष से भी दूर रहना चाहिए। (अथर्व.६.२७.२)

उसी में अन्यत्र कहा गया कि- ऋण की प्रवृत्ति निन्दनीय है। वह मानव को पराधीन बनाती है। **सर्वम् परवशं दुखम्।** अतः हम न इस लोक में ऋणी रहें और न परलोक में। (अथ.६.२७.३)

यजुर्वेद (ईशोपनिषद्) में निष्काम भाव से कर्म करते हुए सैकड़ों वर्षों तक जीवित रहने की प्रेरणा दी गई है। (यजु. ४.२)

कर्त्तव्य को कर्त्तव्य समझकर करते रहना चाहिए। सत्कर्मों को करते हुए सौ वर्ष जीने की ईच्छा करो। कर्त्तव्य कर्म की साधना करने वाले नर में कर्म लिप्त नहीं होते। निर्लेपता के लिए इससे भिन्न अन्य कोई मार्ग नहीं है।

(यजु. ४०.२)

'चरैवेति-चरैवेति' चलते रहो। कर्त्तव्य कर्म करते रहो। आलसी बनकर मत बैठो। स्वप्निल व्यक्तियों में दिव्यता का संचार नहीं हो सकता। जो पुरुष यज्ञ जैसे श्रेष्ठतम कर्म करता है, दिव्यता उसी को प्राप्त होती है। प्रमाद छोड़कर सत्कर्मशील बनना होगा।

यह मेरा है। यह पराया है। ऐसी विचारधारा संकीर्ण-हृदय वालों की होती है। जो उदारचरित हैं, वे वसुधा-भर को अपना कुटुम्ब समझते हैं। स्वार्थ-परार्थ उनके लिए एक ही है।

इस प्रकार दिव्य मानव वही हो सकता है जो अपने अन्तःकरण को स्वच्छ रखता है। मानव काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर इन छः विकारों पर विजय प्राप्त कर अपनी आत्मा को स्वच्छ बनाता है। तभी दिव्यपुरुष कहलाता है। सभी प्रकार के सुख-ऐश्वर्य का साम्राज्य तभी स्थापित होगा, अगर मानव के आचरण में स्वच्छता की निरन्तर अभिवृद्धि होती रहेगी, और वह वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को प्राप्त हो जाये।

अतएव मनुष्य का कल्याण इसी में है कि वह कपट, विश्वासघात, अनिष्ट चिन्तन, परार्थाविघातपूर्वक, स्वार्थसम्पादनादि दुर्गुणों से मुक्त हो। सच्चा मानव बनकर व्यक्ति सर्वत्र स्वच्छ दृश्य का निर्माण कर सकता है। स्वच्छ जीवन-दर्शन मानव एवं जीव-जन्तुओं को सजीव एवं दीर्घायु बनाए रखता है और यह तभी संभव है यदि हमारे चारों ओर का सभी प्रकार का पर्यावरण स्वच्छ तथा निर्मल होगा।

शोधाछात्रा, गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी, अमृतसर

वर्तमान काल में पशुधन (गौ के विशेष सन्दर्भ में) की उपयोगिता

(संस्कृत साहित्य के आधार पर)

–श्री अनिल कुमार

मनुष्य द्वारा पशुओं को पालतू बनाया जाना एक सामाजिक क्रान्ति थी। एक नये युग का सूत्रपात था, जिससे मानव-समाज की प्रगति के नवीन द्वारों का अनावरण हुआ। मनुष्य ने अपने सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक स्वास्थ्य सम्बन्धी एवं धार्मिक महत्त्व की पूर्ति के लिये पशुओं को प्रकृति के आंचल से लाकर अपने घरों में पालना प्रारम्भ कर दिया। ये पालतू पशु संस्कृत-साहित्य में ग्राम्य पशुधन की श्रेणी में गिने गये हैं। प्राचीन काल की ही भान्ति वर्तमान काल में भी कृषि एवं पशुपालन भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार स्तम्भ हैं। कृषि कार्य की कल्पना भी प्राचीन काल में पशुधन के बिना सम्भव नहीं थी।

वर्तमान काल में अधिकतर स्थानों पर मशीनी उपकरणों (ट्रैक्टर) से कृषि कार्य किया जा रहा है। इन उपकरणों को चलाने के लिये पैट्रोल, डीजल इत्यादि प्राकृतिक ईन्धनों का प्रयोग होता है। जिस प्रकार इन संसाधनों का अधिकाधिक प्रयोग हो रहा है, दोहन हो रहा है, उससे भविष्य में एक दिन ऐसा आयेगा जब ये संसाधन समाप्त हो जायेंगे। उस समय उनसे चलने वाले उपकरण, जो आज हमारे सहायक हैं मात्र एक अनुपयोगी वस्तु बन जायेंगे। आज इस बात की आवश्यकता है कि कृषि कार्य में अधिकाधिक पशुधन की विशेषकर(गो वंश) की ऊर्जा एवं शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। पहाड़ी क्षेत्रों में जहां सीढ़ीनुमा खेत हैं, वहां पर कृषि कार्य बैलों को जोतकर किया जाता है। ट्रैक्टर से पहाड़ी क्षेत्रों में खेतों को जोतने से मृदा अपरदन की समस्या कृषक समुदाय के सामने उपस्थित हो जाती है। अतः कृषि कार्य के लिये प्राचीन काल की ही भान्ति वर्तमान काल में भी पशुधन सहायक है।[1] भूमि की उर्वरता बढ़ाने के लिये रासायनिक खादों का प्रयोग हो रहा है। इससे अन्न की उत्पादकता तो बढ़ रही है, परन्तु जो अन्न उत्पन्न हो रहा है, वह कितना शुद्ध एवं पौष्टिक है? इस विषय में निश्चय से कुछ कहा नहीं जा सकता। ये आधुनिक साधन एक तो

1. अथर्ववेद, सायण भाष्य- 4/11/10

अर्थसाध्य हैं एवं उर्वरकादि रसायनों से जल एवं भूमि में रहने वाले असंख्य जीव मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं। इससे हमारा जैविक सन्तुलन असन्तुलित हो रहा है। जिस भूमि पर खेती होती है, उसको उर्वर बनाये रखने के लिये खाद की आवश्यकता पड़ती है। भूमि इच्छानुकूल अन्न तभी पैदा करेगी, जब उसे खाद मिलता रहेगा। यह खाद पशुओं के, विशेषकर गाय के गोबर से तैयार होता है। अथर्ववेद 3-14-3 में पृथ्वी का विशेषण 'करीषिणी' इसीलिये प्रयोग किया गया है। 'करीष' गोबर को कहते हैं। अन्यत्र 10-10-6 में गाय के लिये 'महीलुका' विशेषण प्रयुक्त हुआ है। इसका अर्थ है- भूमि की उर्वरता को बढ़ाने वाली। भूमि की उर्वरता बढ़ाने में पशुधन हमारा सच्चा साथी है। प्राचीन काल में जनसमुदाय पशुओं द्वारा प्रदत्त गोबर एवं मूत्र का खाद बनाने के लिये समुचित प्रकार से संग्रहण करता था। समुचित प्रकार से संग्रहण न करने वाले को अनिष्ट फल प्राप्त होने की बात कही गई है।[2] गोबर एवं गोमूत्र के अतिरिक्त वैदिक काल में दूध एवं घी इत्यादि का भी प्रयोग उर्वरक के रूप में भूमि को उर्वरा बनाने के लिये होता था।[3]

जल अमृत है, जल ही जीवन है, जल में अनेक प्रकार की औषध शक्ति है। यह शरीर में पोषण तत्त्व उत्पन्न करके बल बढ़ाता है। मनुष्य ने रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करके एवं कीटनाशकों के प्रयोग एवं अन्य कृत्यों द्वारा नदियों को ही नहीं, अपितु भूमिगत जल को भी दूषित कर दिया है। 'वाटर एड' नामक एक अंतर्राष्ट्रीय एन० जी०ओ० ने यह चिन्ताजनक तथ्य प्रस्तुत किया है कि भारत में 75 से 80 प्रतिशत तक सतही पानी प्रदूषित है। पंजाब के भूजल में भी एल्यूमीनियम की मात्रा निर्धारित मापदण्डों से बढ़ गयी है। यहां के पानी में यूरेनियम, क्रोमियम, पारा आदि पहले ही मौजूद हैं और अब एल्यूमीनियम की मात्रा बढ़ने से इस पानी का सेवन करने वालों को अनेक दिमागी रोगों के शिकार होने का खतरा भी पैदा हो गया है।[4] जल शुद्धि के प्रति स्मृति कालीन ऋषि समुदाय सचेत था। आपस्तम्ब स्मृति (2/7) में ऋषि कहता है कि गाय के गोबर एवं मूत्र में जल शुद्धि के तत्त्व विद्यमान हैं। यदि कृषि योग्य भूमि पर गोबर एवं गोमूत्र से बनी हुई जैविक खादों का प्रयोग किया जाये, तो उस कृषि भूमि से जो जल रिसकर भूमिगत जलस्रोतों में पहुँचेगा, वह शुद्ध होगा, जो अन्न उपजेगा वह शुद्ध एवं पौष्टिक होगा। जलस्रोतों को साफ करके वहां गोमूत्र, गोमय

2. अथर्व. 12/4/9

3. वही, 13/7/8

एवं पञ्चगव्य छिड़कने से वहां का जल शुद्ध होता है।

स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है। स्वस्थ मस्तिष्क में ही सर्जनात्मक वृत्तियों का प्रकाशन होता है। वर्तमान काल में दुग्ध मनुष्य के दैनिक आहार का प्रमुख घटक है। यह दूध हमें पशुधन से प्राप्त होता है। चरक-संहिता के सूत्रस्थान अध्याय में सभी दुधारु पशुओं के दुग्ध के औषिधीय गुणों का वर्णन है।[4] वेद का आदेश है निर्विष दूध पीओ। दूध से बने अन्य दहीं इत्यादि पदार्थों का भी प्रयोग मनुष्य भोज्यपदार्थ के रूप में करता है। अतः प्राचीन काल की ही भान्ति वर्तमान काल में भी पशुधन हमारा सहायक है। गौ के गोबर, मूत्र, दूध, दहीं एवं घी से बनने वाले पञ्चगव्य नामक पदार्थ को स्मृतिसाहित्य में दिव्य औषधि के रूप में वर्णित किया है। इसे बनाने की विधि का वहां पर वर्णन किया गया है।[5] 'अनेकों रोगों का निदान इस औषधि के नित्य प्रयोग से हो जाता है' यह संस्कृत साहित्य में वैदिक एवं स्मृतिकालीन ऋषिसमुदाय का मत है जिसे आधुनिक विज्ञान भी आज अपने प्रयोगों में तर्क की कसौटी पर रखकर सत्य सिद्ध कर रहा है। वर्तमान काल में यदि 'बायोगैस संयन्त्र' में पशुधन के गोबर एवं मूत्र का प्रयोग किया जाये तो ईंधन का एक स्वच्छ एवं धुंआरहित संसाधन प्राप्त किया जा सकता है। दुग्धव्यवसाय (*Dairy System*) को अपनाकर अनेक बेरोजगार युवा आर्थिक लाभ कमा सकते हैं। इससे सिद्ध होता है कि जितना महत्त्व वैदिक काल में पशुधन का मानवीय जीवन में था, उतना ही वर्तमान काल में भी है। परन्तु अन्तर इतना है कि वैदिक काल में पशुधन विशेषकर गोधन का जीवन स्तर समुन्नत एवं समुज्ज्वल था और वर्तमान काल में गोवंश की दशा किसी से नहीं छिपी है। अतः हमें संस्कृत साहित्य में पशुपालन की रीति एवं पशुधन से आत्मीय सम्बन्ध का आभास कराने वाले प्रसङ्गों को पढ़कर अपने जीवन में धारण कर पशुधन के संरक्षण एवं संवर्धन हेतुप्रयत्नशील होना चाहिए।

शोधछात्र, संस्कृत विभाग, गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय, अमृतसर।

---

4. चरक संहिता, सूत्र स्थान अध्याय/ 213 से 220
5. लघुयम स्मृति/श्लोक संख्या 71 से 73 तक

सरस्वती वन्दना

–महात्मा चैतन्यमुनि

हमको विद्या दान दे दो, जग को विद्यादायिनी।
करुणा कर कल्याण कर दो, हंस की हे वाहिनी।।

तिमिर हो दूर चंहु दिश प्रभात का उज्जास कर दे,
सकल विश्व में हे मां उल्लास ही उल्लास भर दे।
हास व परिहास हो, जीवन हमारा आकाश कर दे।।

दु:ख दर्द धरा के दूर कर, हे परम सुखदायिनी।
हमको विद्या दान दे दो, जग को विद्यादायिनी।
करुणा कर कल्याण कर दो, हंस की हे वाहिनी।।

दुरित हो दूर सारे हृदय में भद्रता भरो मां,
कर्म पथ पर बढ़ चलें हम, सकल दरिद्रता हरो मां।
आत्मा के स्वर में उतरे मृत्यु को अमरता करो मां।।

दुष्टता का सज्जनता से श्रृंगार कर जग तारिणी।
हमको विद्या दान दे दो, जग को विद्यादायिनी।
करुणा कर कल्याण कर दो, हंस की हे वाहिनी।।

विश्व आंगन को संवारे ऐसा हमें वर दो मैया,
दीन दु:खी के आश्रय बनें, ऐसा हमें कर दो मैया।
हर हृदय में प्रभु प्यार भरें ऐसा हमें स्वर दो मैया।।

महादेव, सुन्दरनगर-174401 (हि.प्र.)

पुस्तक - घुम्मकड़ साधक

यायावर पीताम्बर

लेखक पीताम्बर दत्त रत्यूड़ी

घुमक्कड़ और स्थाणु दो शब्द परस्पर विरोधमूलक प्रचलित हैं तो सिद्ध है कि संसार में दो प्रकृति के मनुष्य सदा वर्तमान रहे, परन्तु स्थिर रहना और विचरण करना सार्वजनिक होते हुए भी जब कोई एक शब्द किसी व्यक्ति का विशेषण बन जाता है तो समझना चाहिए कि वह उसकी अपरिहार्य आदत को प्रकट करता है हालांकि विचरणप्रिय भी कभी स्थिर रहता ही है और स्थिरता-प्रिय भी विचरण का आनन्द लेता ही है। डॉ. पीताम्बर की आत्म-कथा से लगता है कि वे मुश्किलों से एक स्थान पर रह कर खतरों और खटकों के जीवन को अधिक पसन्द करते हैं। इसलिए मैंने उनके विषय में कुछ लिखने के लिए शीर्षक चुना है- यायावर पीताम्बर। इस यायावर शब्द के विशेषण पीताम्बर शब्द के रूढ़ अर्थ से अभिहित श्रीकृष्ण भगवान् अर्थ की निवृत्ति हो जाती है।

मैंने पहले कहा है कि चेतन-प्राणी बिना घूमे रह नहीं सकता है, परन्तु जैसा कि उनकी आत्मकथा से लगता है कि पीताम्बर जी को तो जैसे खाना हजम ही नहीं होता। यदि वे ईंट-गारे से बने घर से बेघर बनकर यात्रा नहीं करते हैं तो वे कल्पना में यात्रा का आनन्द उठा लेते हैं। बचपन से ही दोस्तों को लेकर घर से निकल जाने में आनन्द लाभ करते हैं द्रष्टव्य.......यायावरी में मनुष्य को परिस्थितियों से जूझने का खतरा उठाना पड़ता है। उसे हम भाग्य के सहारे राह तय करते हुए नहीं देखते हैं। अपितु स्वयं उचितानुचित निर्णय लेते हुए देखते हैं। वह घबराते हुए साहस नहीं खोता है। ग्लेसियर की ओर बढ़कर प्राणों के खतरे को लेखक वापस लौटने का साहस नहीं त्यागता है। पीताम्बर प्रयत्न पर विश्वास करते हैं। परन्तु नास्तिक नहीं, सर्वथा आस्तिक बनकर। पुल ईश्वर के-अदृष्ट को हाथ में मानकर कर्म करने का अधिकार अपना समझकर काम करते हैं।

पीताम्बर का जीवन सागर में थपेड़े झेलता हुआ जीवन है। शान्तिपूर्वक जीना उन्होंने कभी नहीं चाहा। कामयाब तथा पितृभक्त पुत्र के साथ कनाडा में रहते हुए पीताम्बर ने योगाभ्यास करते और करवाते अपनी रीढ़ हड्डी को रोगाक्रान्त बना लिया और फिर नाना उपायों का सहारा लेकर ठीक भी कर लिया जिसमें उसे प्राणान्तक कष्ट उठाना पड़ा।

इस घुमक्कड़ प्राणी के मनोदेश की खोज

कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि इस बँधे हुए जीवन की अपेक्षा प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में खेलना अधिक अच्छा लगता है जिसका वर्णन करने में यह कवि बन जाता है। समासोक्ति हो या स्वभावोक्ति प्राकृतिक वातावरण को चित्रित करना हैं यह आनन्द विभोर हो उठता है- उदाहरणार्थ-

मणिकर्ण से खीरगंगा के लिए मार्ग पार्वती नदी के साथ चलता था। जाते समय बायीं ओर गगनचुम्बी हिमखण्डित चोटियाँ और दायीं ओर देवदार का घना जंगल, सामने एक हिमाच्छादित चोटी। लगता था कि अब आई और तब आई। सारा दिन चलने के बावजूद भी उतनी ही दूरी थी जितनी आरम्भ में। आस-पास छोटे-छोटे गाँव, सीढ़ियाँनुमा खेत, चारों ओर से सेब और नाशपति के फूलों की हवा के साथ क्रीडामय भव्य दृश्य। सामने हिमाच्छादित चोटी की चुनौती कि आजा बेटे! अपने आपको बहुत फुर्तीला और ताकतवर समझता है। दूसरी ओर सफेद फूलों का आह्लादमय उत्साहवर्धन। मानो कह रहे हों कि जीवन में इसी तरह हर क्षण को सुन्दर और खुशबूदार बनाते हुए मंजिल की ओर बढ़ते चलो। रास्ते में एक ओर भव्य हरीतिमा और दूसरी ओर गगनचुम्बी शुष्क पर्वतमालायें, तीसरी ओर हिमाच्छादित ऊंची चोटी तथा बीच में व्यग्र पार्वती की सागर में मिलने के लिए तीव्र गति।

यह बड़ा भव्य एवं संश्लिषृ चित्रण है लेखक को ऐसे दृश्य-चित्रण करते हुए स्थान-स्थान पर देखा जा सकता है।

डॉ. पीताम्बर ने स्मृति-रेखाओं को खींचते समय अपने-आपको किसी तरह छिपाने की चालाकी नहीं दिखाई है। पहाड़ की प्रकृति की मनोरमता के बीच जीवन की अभद्र स्थितियों के मध्य गुजरते हुए उसने बेधड़क तथा ईमानदारी के साथ अपनी आप-बीती सुनाने का साहस दिखाया है। लोगक्या सोचेंगे-यह भाव ग्रसा नहीं करता है। फलतः यह जीवनी है आंचलिक लम्बी कहानी का रूप धारण की हुई लगती है।

लेखक की यह जीवनी भले ही स्वान्तः-सुखाय वर्णित हो, किन्तु इसे पढ़कर एक किं-कर्तव्य-विमूढ़ व्यक्ति अपनी जीवनयात्रा की दिशा निश्चित कर सकता है। यह एक भग्नाश व्यक्ति में आशा का संचार कर सकती है। युद्धस्व विगतज्वरः गीता के संदेश को प्रसारित करने में सहायिका बन सकती है। मैं डॉ. पीताम्बर को इस सफल कृति को हिन्दी-जगत् को प्रदान करने लिए धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि वे जीवन के शेषांश को भी जीवन्त बनाते हुए लोगों को प्रेरणा देते रहेंगे।

महामहिम राष्ट्रपति सम्मानित विद्वान आचार्य डॉ. मथुरादत्त पाण्डेय,
मकान नं- 1292, सैक्टर-15, पंचकूला, हरियाणा।

संस्थान-समाचार

दान –

श्री नरेश सूद, ए.बी.सी. हैण्डलूम, कोतवाली बाजार, होशियारपुर।	1500/–
मै. भूवालिका जन कल्याण ट्रस्ट जलन मार्ग, रतनगढ़, चुरू (राजस्थान)	1000/–
योग साधना आश्रम 3 एल, माडल टाऊन होशियारपुर	750/–
श्री अशोक कुमार खेर बी–14, 101 कमर्शीयल कम्पलैक्स, डा० मुकर्जी नगर, दिल्ली–9।	2100/–
श्री देवेन्द्र लाल कुमार अतर दीवान ट्रस्ट, कुमार निवास, कम्पनी बाग, सिविल लाईन, मुरादाबाद	1000/–
डॉ. एस.एल. चावला चावला चिलड्रन होस्पीटल, शहीद ऊधम सिंह नगर, जालन्धर	2000/–
श्रीमती एकता खोसला एच.एम.वी.कालेज, जालन्धर	1000/–
मै० पी.के.एफ. फाईनैंस लि० कार्पोरेट आफिस, बलवीर टावर, पी.के.एफ.नामदेव चौक, जी.टी. रोड़, जालन्धर	2100/–
श्री बृज मोहन वी.वी.आर.आई. होशियारपुर	500/–
श्री राजीव शर्मा गली नं: 2, कृष्णा नगर, होशियारपुर	500/–
श्रीमती आरती भसीन पत्नी श्री सतेन्द्र भसीन, 6–ए, आनन्द धाम, 25, प्रभात कालोनी, सन्ताक्रुज, मुम्बई–55	2100/–

हवन-यज्ञ–

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से हुआ। जुलाई 2016 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में परमपूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का पाठ किया गया।

शोक समाचार-

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान की कार्यकारिणी के आजीवन सदस्य, संस्थान के आदरी प्रोफेसर, विश्वज्योति के सह-सम्पादक, पंजाब विश्वविद्यालय पटल के पूर्व चेयरमैन डॉ. त्रिलोचन सिंह बिन्द्रा जी का दिनांक 30 जून, 2016 को अकस्मात् निधन हो गया।

डॉ. बिन्द्रा का संस्थान के साथ लगभग 55 वर्ष का सम्बन्ध था। अपने एम.ए. संस्कृत इसी संस्थान से उत्तीर्ण की। आपकी योग्यता तथा संस्थान के प्रति अगाध निष्ठा को ध्यान में रखकर आद्य संचालक आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु जी ने आपकी नियुक्ति संस्थान में ही कर दी। यहीं कार्य करते हुए आप पंजाब विश्वविद्यालय पटल के रिसर्च विभाग से सेवामुक्त होकर संस्थान में जीवन के अन्तिम दिन (29-06-2016) तक निःशुल्क कार्य करते रहे। आपका प्रतिदिन प्रातः 9 बजे संस्थान में आना और सायंकाल वापिस जाना जीवनपर्यन्त बना रहा। स्यात् ही कोई ऐसा दिन रहा हो जब डॉ० बिन्द्रा होशियारपुर में रहते हुए संस्थान से अनुपस्थित रहे हों। आपका नगर में अच्छा सम्मान था। सामाजिक कार्यों में आपकी निःस्वार्थ रुचि थी। इसीलिए आप नगर की अनेक संस्थाओं के माननीय सदस्य भी थे। आप दिल के भले, परोपकारी, सहृदय, मिलनसार, सभी के कार्य के लिए सर्वदा सच्चे हृदय से तत्पर रहना, वचन के धनी, इरादे के पक्के, वचन के सच्चे, मित्रों के मित्र तथा कभी भी अपनी बात से पीछे न हटने वाले इन्सान थे। संस्था के प्रति आपका जो अनन्य प्रेम व स्नेह था वह जनप्रसिद्ध था। अतः संस्थान के प्रति जो उनका प्रेम था वह भुलाया नहीं जा सकता। आपकी उदारभावना को सर्वदा ही स्मरण किया जाता रहेगा।

ऐसी आत्मा के दिवंगत होने पर उनके परिवार, संस्थान एवं इष्ट-मित्रों व होश्यारपुर नगर की जो क्षति हुई है उसकी भरपाई होना कठिन ही नहीं अपितु असंभव है।

प्रभु से प्रार्थना है कि वे ऐसी पवित्र आत्मा को अपनी शरण में लेते हुए उनके परिवार, सम्बन्धियों, एवं संस्थानीय व्यक्तियों, इष्ट-मित्रों को इस दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

ॐ शान्तिः। शान्तिः।। शान्तिः।।।

संस्थान-समाचार

संस्थान के वित्त-विभाग के कर्मिष्ठ मास्टर शंकरदास जी की माता जी का 102 वर्ष की आयु में गांव बढलठोर, जिला कांगड़ा (हि०प्र०) में 26-6-16 को देहान्त हो गया। माता जी बड़ी धार्मिक विचारों वाली एवं दयालु स्वभाव की थीं। अन्तिम समय में भी आप स्वस्थ एवं सभी काम स्वयं कर रही थीं और मृत्यु से पहले परिवार के सदस्यों को किए जाने वाले कार्यों के बारे में भी बताया।

संस्थान की कर्मिष्ठ श्रीमती नीलम की सास का 21-7-2016 को 60 वर्ष की आयु में होश्यारपुर में अचानक देहान्त हो गया। वह कुछ समय से बीमार थीं।

संस्थान के ही पुस्तक विक्रय विभाग के कर्मचारी श्री सूर्यबहादुर की माता जी का 80 वर्ष की आयु में 19-7-2016 को नेपाल में अपने गांव में देहान्त हो गया।

शोक के इस अवसर पर संस्थान के कर्मिष्ठों की ओर से दुःखी परिवारों के साथ सम्वेदना प्रकट की जाती है और प्रभु से प्रार्थना है कि वह दिवंगत आत्माओं को शान्ति प्रदान करे तथा उनके शोक- संतप्त परिवारों को इस दुःख को सहने की शक्ति प्रदान करे।

विविध-समाचार

पर्याप्त पानी पीने से कई बीमारियां पास नहीं फटकती

पानी में छिपा है मोटापा कम करने का राज

पर्याप्त पानी पीने से न केवल सेहत ठीक रहती है बल्कि कई बीमारियां भी पास नहीं फटकती हैं। यही नहीं इसमें मोटापा कम करने का भी राज छुपा हो सकता है। यह दावा एक अध्ययन में किया गया है।

शोधकर्ताओं ने बताया कि मोटे और ज्यादा बॉडी मास इंडेक्स (बीएमआइ) वाले लोगों में पर्याप्त पानी की कमी हो सकती है। हम लोग अक्सर सुनते हैं कि ज्यादा खाने के बजाय पानी पीना बेहतर है। इसमें 18 से 64 साल के करीब एक तिहाई लोगों में पर्याप्त पानी की कमी पाई गई। शोधकर्ताओं ने कहा कि ज्यादा बीएमआइ वाले लोगों को अधिक पानी पीने की जरूरत दिखी। ऐसे लोगों को उन चीजों का ज्यादा सेवन बेहतर हो सकता है जिनमें पानी की मात्रा अधिक रहती है। फल और सब्जियों का सेवन लाभदायक हो सकता है। अध्ययन का प्रकाशन जर्नल एनल्ज ऑफ फेमिली मेडिसिन में किया गया है।

इलेक्ट्रॉनिक उपकरण ठंडा करने वाली रेत विकसित- वैज्ञानिकों ने ऐसी रेत विकसित की है जो इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों को जल्द ठण्डा कर सकती है। इसमें पोलिमर की परत चढ़ी सिलिकॉन डायऑक्साइड नैनोपार्टिकल्स होते हैं। परत चढ़ी नैनोस्केल सिलिकॉन डायऑक्साइड की विशेष खूबी से ऐसा होता है। मौजूदा गर्मी कम करने वाले पदार्थ की तुलना में यह ज्यादा प्रभावी तरीके से ठंडा करती है। यह इलेक्ट्रॉनिक, एलईडी और अन्य उपकरणों को ठंडा करने में उपयोगी हो सकता है।

डायबिटीज रोगियों में कैंसर का खतरा- डायबिटीज रोगियों के लिए कई बीमारियां मुंह फैलाए खड़ी रहती हैं। ऐसे रोगियों में इस बीमारी का पता चलने से पहले या कुछ समय बाद ही कैंसर की चपेट में आने की आशंका ज्यादा रहती है। यह निष्कर्ष नए शोध में सामने आया है। शोधकर्ताओं के अनुसार, किसी रोगी में टाइप-2 डायबिटीज का पता चलने के महज तीन महीने के अन्दर कैंसर होने का खतरा सबसे ज्यादा रहता है। हालांकि इस अवधि के बाद आशंका कम हो जाती है। कनाडा की टोरंटो यूनिवर्सिटी की सहायक प्रोफेसर इलियाना लेगा ने बताया, ' डायबिटीज का पता चलने के बाद ज्यादा देखभाल और स्क्रीनिंग टेस्ट से यह आशंका कम हो सकती है। पहले के भी कई शोध में यह बात निकलकर आई कि टाइप-2 डायबिटीज पीड़ितों को कई तरह के कैंसर हो सकते हैं।

जीवनशैली में बदलाव कर डायबिटीज को रोका जा सकता है। इसी तरह सही आहार और व्यायाम से कैंसर के खतरे को कम किया जा सकता है। शोध का प्रकाशन जर्नल कैंसर में किया गया है।

कुलीनैः सह संपर्कं पण्डितैः सह मित्रताम्।
ज्ञातिभिश्च समं मेलं कुर्वाणो न विनश्यति।।

चाणक्यनीति, २९२

जीवन में अच्छे व्यक्तियों के साथ मेलजोल रखने वाला तथा विद्वान् व्यक्तियों के साथ मित्रता रखने वाला एवं अपने संबंधियों के साथ संबंध बनाये रखने वाला व्यक्ति नष्ट नहीं होता अर्थात् अवनति को प्राप्त नहीं होता।

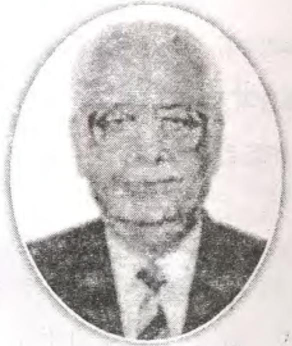

Sh. Balbir Raj Sondhi

(1926–1993)

Who had lived well, laughed often and loved much, Who had gained the respect of intelligent women, men and love of children; Who never locked appreciation of earth's beauty or failed to express it;Who followed his dreams and pursued excellence in each task. He continues to inspire us.......
Family, Directors & Staff

58 glorious years.....
PKF
Trusted Since 1958

PKF FINANCE LTD.

Corporate Office : "Balbir Tower", PKF-Namdev Chowk,
G. T. Road, Jalandhar–144 001Ph.: 0181–2238611 Fax : 2236802
website: www.pkffinance.com

यन्मातापितरौ वृत्तं तनये कुरुतः सदा।
न सुप्रतिकरं तत् तु मात्रा पित्रा च यत्कृतम्।।

रा.अयोध्या. ११९.९

माता-पिता जीवनभर पुत्र के लिए जो उपकार करते रहते हैं उनका बदला आसानी से नहीं चुकाया जा सकता।

स्वकालीन पंजाब के संस्कृत-अध्यापक-वर्ग के पराक्रमी पुरोधा एवं होश्यारपुर व कांगड़ा के पर्वतीय-क्षेत्र के निष्काम समाजसेवी,पंजाब-संस्कृत-परिषद् के प्रधान एवं पंजाब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के उपप्रधान तथा केन्द्रीय संस्कृत- प्रसार-समिति ट्रस्ट के संस्थापक

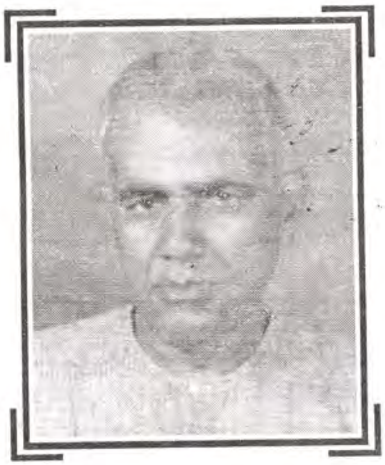

स्वर्गीय परमपूज्य पिताश्री पं. अमरनाथ शास्त्री

की पुण्यस्मृति में समर्पित

प्रयोजक :

प्रिंसिपल उमेशचन्द्र शर्मा, पी.ई.एस. (I) रिटायर्ड,

ईशा निवास, शिवशक्ति नगर, होशियारपुर।

अनुक्रोशो हि साधूनां महद् धर्मस्य लक्षणम्।
अनुक्रोशश्च साधूनां सदा प्रीतिं प्रयच्छति।।

महा.अनु. ५.२४

महान् पुरुषों के लिए दूसरे के ऊपर दया करना बड़े धर्म का सूचक है अर्थात् दया करना बहुत बड़ा धर्म है। बड़े व्यक्तियों की यह सबसे बड़ी पहचान है कि उन्हें किसी पर दया करने से सर्वोपरि आनन्द प्राप्त होता है वे अर्थात् दया को आनन्द का मूल मानते हैं।

स्व. श्री प्रभुदयाल जी

[जिनका दु:खद निधन 26.11.1992 को हुआ]

की
पुण्यस्मृति
में

की ओर से

श्री अशोक कुमार खेर

B.Com. (H), LL.B., FCA

सर्वश्री अशोक खेर एण्ड कम्पनी

(CHARTERED ACCOUNTANTS)

101, बी-14, मुखर्जी नगर कम्पलैक्स,
दिल्ली - 110 009.

अतिथिः पूजितो यस्य गृहस्थस्य तु गच्छति।
नान्यस्तस्मात् परो धर्म इति प्राहुः मनीषिणः।।

महा.अनु. २.७.

जिस गृहस्थी के घर पर आया हुआ अतिथि पूजित होकर जाता है। उस गृहस्थी के लिए इससे बढ़कर और धर्म नहीं हो सकता अर्थात् मनीषियों का कथन है कि गृहस्थ के लिए अतिथिसेवा सर्वोपरि है।

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित :

सर्वश्री भुवालका जनकल्याण न्यास

'तोशहाऊस' पी–32/33

इण्डिया एक्सचेंज प्लेस, कोलकाता–700 001

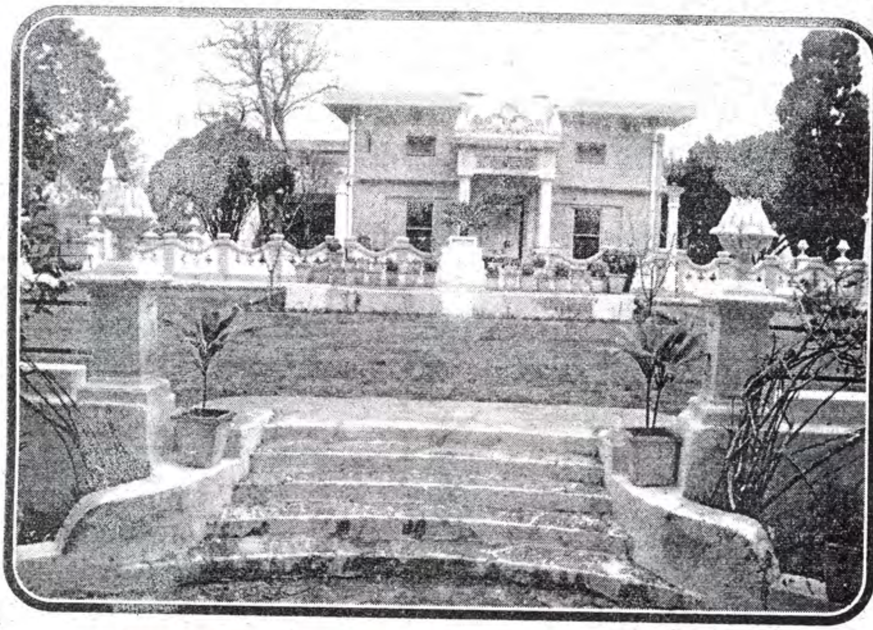

(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-७-२०१६ को प्रकाशित।